पेरिस कम्यून : पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा

आज भारत ही नहीं, पूरी दुनिया के मज़दूर पूँजी की लुटेरी ताक़त के तेज़ होते हमलों का सामना कर रहे हैं, और मज़दूर आन्दोलन बिखराव, ठहराव और हताशा का शिकार है। ऐसे में इतिहास के पन्ने पलटकर मज़दूर वर्ग के गौरवशाली संघर्षों से सीखने और उनसे प्रेरणा लेने की अहमियत बहुत बढ़ जाती है। आज से 141 वर्ष पहले, 18 मार्च 1871 को फ्रांस की राजधानी पेरिस में पहली बार मज़दूरों ने अपनी हुकूमत क़ायम की। इसे पेरिस कम्यून कहा गया। उन्होंने शोषकों की फैलायी इस सोच को ध्वस्त कर दिया कि मज़दूर राज-काज नहीं चला सकते। पेरिस के जाँबाज़ मज़दूरों ने न सिर्फ़ पूँजीवादी हुकूमत की चलती चक्की को उलटकर तोड़ डाला, बल्कि 72 दिनों के शासन के दौरान आने वाले दिनों का एक छोटा-सा मॉडल भी दुनिया के सामने पेश कर दिया कि समाजवादी समाज में भेदभाव, ग़ैर-बराबरी और शोषण को किस तरह ख़त्म किया जायेगा। आगे चलकर 1917 की रूसी मज़दूर क्रान्ति ने इसी कड़ी को आगे बढ़ाया।

मज़दूर वर्ग के इस साहसिक कारनामे से फ्रांस ही नहीं, सारी दुनिया के पूँजीपतियों के कलेजे काँप उठे। उन्होंने मज़दूरों के इस पहले राज्य का गला घोंट देने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया और आख़िरकार मज़दूरों के कम्यून को उन्होंने ख़ून की नदियों में डुबो दिया। लेकिन कम्यून के सिद्धान्त अमर हो गये।

पेरिस कम्यून की हार से भी दुनिया के मज़दूर वर्ग ने बेशक़ीमती सबक़ सीखे। पेरिस के मज़दूरों की क़ुर्बानी मज़दूर वर्ग को याद दिलाती रहती है कि पूँजीवाद को मटियामेट किये बिना उसकी मुक्ति नहीं हो सकती।

'मज़दूर बिगुल' के इस अंक से हम दुनिया के पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा की शुरुआत कर रहे हैं, जो अगले कई अंकों में जारी रहेगी। – **सम्पादक**

पूँजी की बर्बर ज़ालिम सत्ता के ख़िलाफ़ लड़ना कैसे सीखा मज़दूरों ने

1. **अठारहवीं सदी** के अन्त तक यूरोप में पूँजीपति वर्ग का ज़बर्दस्त विकास हो चुका था। लूट-खसोट के औपनिवेशिक युद्धों और मज़दूरों के भयानक शोषण से वह बेपनाह धन-दौलत बटोर रहा था। दूसरी ओर, मज़दूरों की हालत बहुत ही ख़राब थी और उनकी ज़िन्दगी अमानवीय कठिनाइयों से भरी हुई थी। उस समय तक मज़दूरों की संख्या में काफ़ी बढ़ोत्तरी हो चुकी थी लेकिन उन्हें अभी राजनीतिक संघर्ष का कोई अनुभव नहीं था और वे अब भी असंगठित थे। अपनी स्थिति और अपनी ऐतिहासिक भूमिका की चेतना भी उनमें बहुत कम थी। कारख़ानेदार मज़दूरों की बेबसी और सस्ते श्रम की बहुतायत का फ़ायदा उठाकर उनकी मेहनत को बुरी तरह निचोड़ डालते थे। मज़दूरों को रोज़ सोलह से अठारह घण्टे काम करना पड़ता था और स्त्रियों तथा बच्चों से भारी पैमाने पर काम कराया जाता था। मज़दूर भोर होते ही फैक्ट्री में चले जाते थे और देर रात बाहर निकलते थे। महीनों तक उन्हें धूप नहीं दिखायी देती थी। गन्दी और प्रदूषणभरी जगहों में बिना हिले-डुले एक ही स्थिति में कई-कई घण्टों तक बैठकर काम करने के कारण वे तमाम तरह की बीमारियों से ग्रस्त रहते थे और दुर्घटनाओं में मौत या शरीर का नाकाम हो जाना आम बात थी। अठारहवीं सदी के अन्त में इंग्लैण्ड में मज़दूरों की कुल मौतों में से 40 प्रतिशत टीबी की बीमारी से होती थीं। लगभग इसी समय के आसपास फ्रांस में मज़दूरों की औसत उम्र घटकर सिर्फ़ 35 वर्ष रह गयी थी। कमरतोड़ मेहनत, रिहाइश की नर्क जैसी स्थितियों, लगातार आधा पेट खाने और ग़रीबी के हालात ने उस समय मज़दूर वर्ग के भौतिक और आत्मिक विनाश का ख़तरा पैदा कर दिया था।

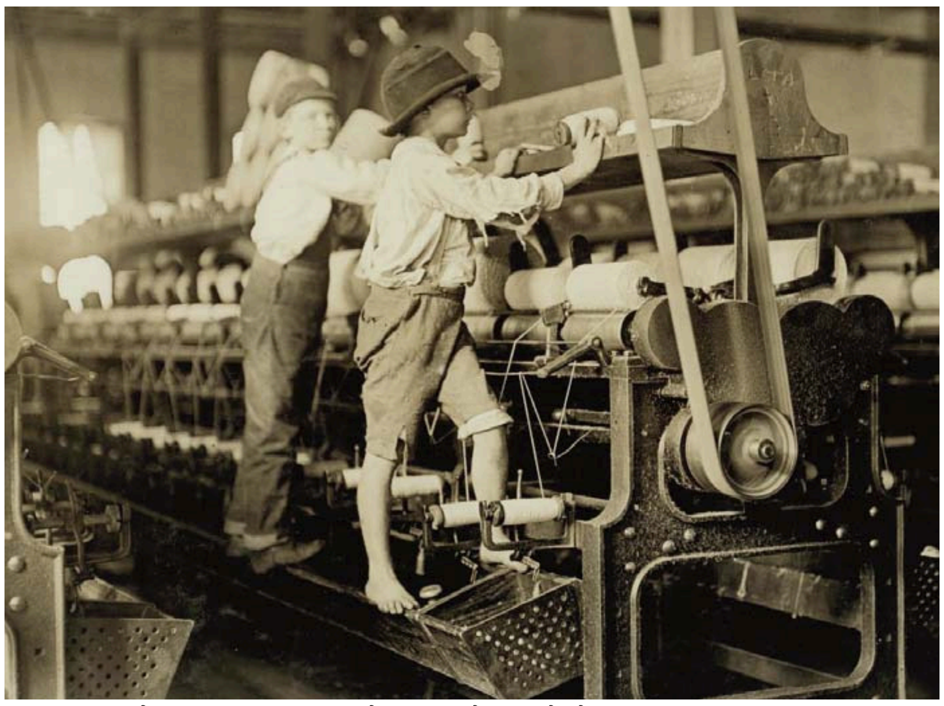

2. एक मिल में मशीन पर काम करते हुए बच्चे। बच्चों से हर तरह का काम कराया जाता था और 12-14 घण्टे काम के बदले उन्हें पुरुषों से आधी से भी कम मज़दूरी मिलती थी।

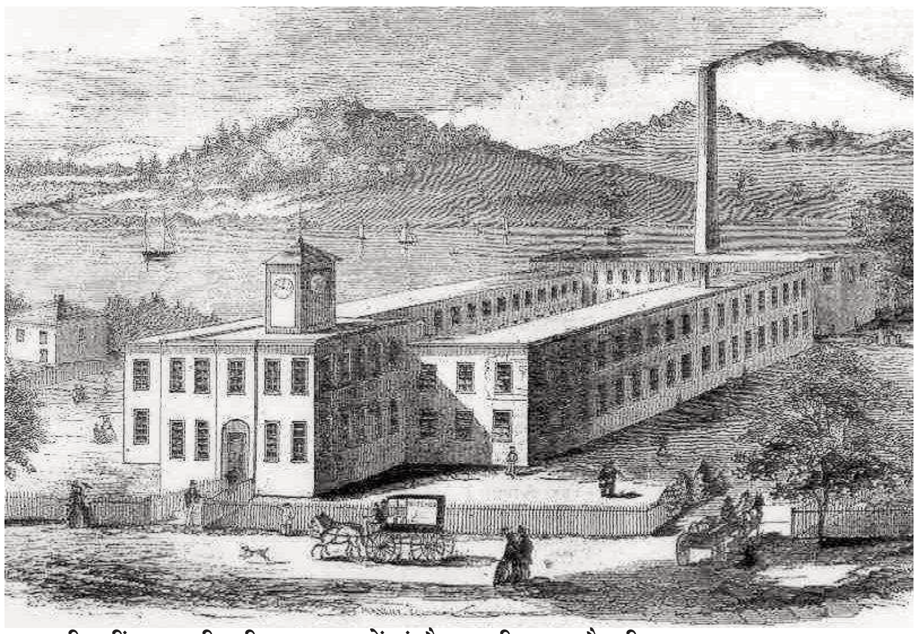

1. उन्नीसवीं शताब्दी की शुरुआत में इंग्लैण्ड की एक फ़ैक्ट्री

4. लन्दन की एक सड़क पर रात काटते बेघर मज़दूर

टेक्सटाइल मिलों में काम करने वाले मज़दूरों में बड़ी संख्या में विकलांग हो जाते थे क्योंकि वे अन्धाधुन्ध रफ़्तार से चलती मशीनों के गुलामों की तरह काम करते थे। अपनी प्रसिद्ध किताब 'इंग्लैण्ड में मज़दूर वर्ग की दशा' में फ्रेडरिक एंगेल्स लिखते हैं कि कपड़ा उद्योग के सबसे बड़े शहर मानचेस्टर की सड़कों पर थोड़ी दूर भी चलने पर कम से कम 3-4 ऐसे लोग मिल जाते थे जिनका कोई-न-कोई अंग टूटा या विकृत होता था। नमी, गर्मी और सड़ाँध भरी फ़ैक्ट्रियों में 14-16 घण्टे लगातार काम करने से मज़दूर कम उम्र में ही मौत के मुँह में समा जाते थे। एंगेल्स लिखते हैं, "जिन हालात में मज़दूर रहते और काम करते हैं उनके कारण जल्दी ही उनका शरीर जर्जर हो जाता है। उनमें से ज़्यादातर 40 का होते-होते काम करने लायक नहीं रह जाते, कुछ 45 तक काम करते रहते हैं, लेकिन 50 की उम्र तक लगभग कोई टिका नहीं रहता। बहुत से लोग शरीर के बिल्कुल कमज़ोर हो जाने के कारण बेकार हो जाते थे और बहुत से मज़दूर इसलिए निकाल दिये जाते थे क्योंकि सूत की तकलियों के पतले धागों पर घण्टों कम रोशनी में लगातार नज़र गड़ाये रहने के चलते उनकी आँखों की रोशनी चली जाती थी।" एंगेल्स ने यह किताब 1844 में लिखी थी, जब काफ़ी संघर्षों के बाद मज़दूरों की हालत में थोड़ा सुधार आया था। इसी से अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि उन्नीसवीं सदी के शुरू में उनकी स्थिति कैसी रही होगी।

3. एक कताई मिल में काम कर रहीं स्त्री मज़दूर

2. आख़िरकार, ख़ुद को बचाने के सहजबोध से मज़दूरों ने अपने मालिकों के ख़िलाफ़ लड़ना शुरू किया। लेकिन उन्नीसवीं सदी के शुरू में मज़दूरों में इस बात की चेतना नहीं थी कि उनकी तकलीफ़ों और मुसीबतों का ज़िम्मेदार कौन है। पहले उन्होंने यही समझा कि मशीनों के चलन के कारण ही उनकी हालत इतनी असहनीय हो गयी है। इंग्लैण्ड के बड़े औद्योगिक शहरों – नॉटिंघम, यार्कशायर और लंकाशायर में 1811 में मज़दूरों ने मशीनों को नष्ट करने का सुनियोजित अभियान छेड़ दिया। इन मण्डलियों का सरदार "जनरल लुड्ड" नाम का एक काल्पनिक चरित्र था। कहा जाता है कि उसका नाम नेड लुड्ड नाम के मज़दूर पर पड़ा था जिसने इस आन्दोलन की शुरुआत की थी। मज़दूरों के ये दस्ते कारख़ाना मालिकों के ख़िलाफ़ हिंसक कार्रवाइयाँ करते थे, कारख़ानों को आग लगा देते थे और मशीनों के छोटे-छोटे टुकड़े कर डालते थे। पुलिस उनसे निपटने में नाकाम हो गयी तो पूँजीपतियों की माँग पर सेना की टुकड़ियाँ भेजी गयीं। इसे कुचलने के लिए संसद ने बहुत सख़्त क़ानून बनाया जिसके तहत 17 मज़दूरों को फाँसी दे दी गयी और बहुतों को हज़ारों मील दूर, ऑस्ट्रेलिया भेज दिया गया। धीरे-धीरे मज़दूरों ने समझ लिया कि मशीनें उनकी तकलीफ़ों का स्रोत नहीं हैं और उनको नष्ट कर देने से उनकी ज़िन्दगी बेहतर नहीं हो जायेगी। हालाँकि काफ़ी बाद तक मशीनों पर अपना गुस्सा निकालने का सिलसिला छिटपुट रूप में चलता रहा। जैसा कि कार्ल मार्क्स ने लिखा है: "काफ़ी समय बीत जाने और काफ़ी अनुभव प्राप्त कर लेने के बाद मज़दूर मशीन और पूँजी द्वारा मशीन के उपयोग में भेद कर पाये और उन्होंने अपने प्रहार का निशाना उत्पादन के भौतिक औज़ारों को नहीं बल्कि उस विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था को बनाना सीखा जो इन औज़ारों का उपयोग करती है।"

5. इंग्लैण्ड में एक कारख़ाने में मशीन को नष्ट कर रहे मज़दूर

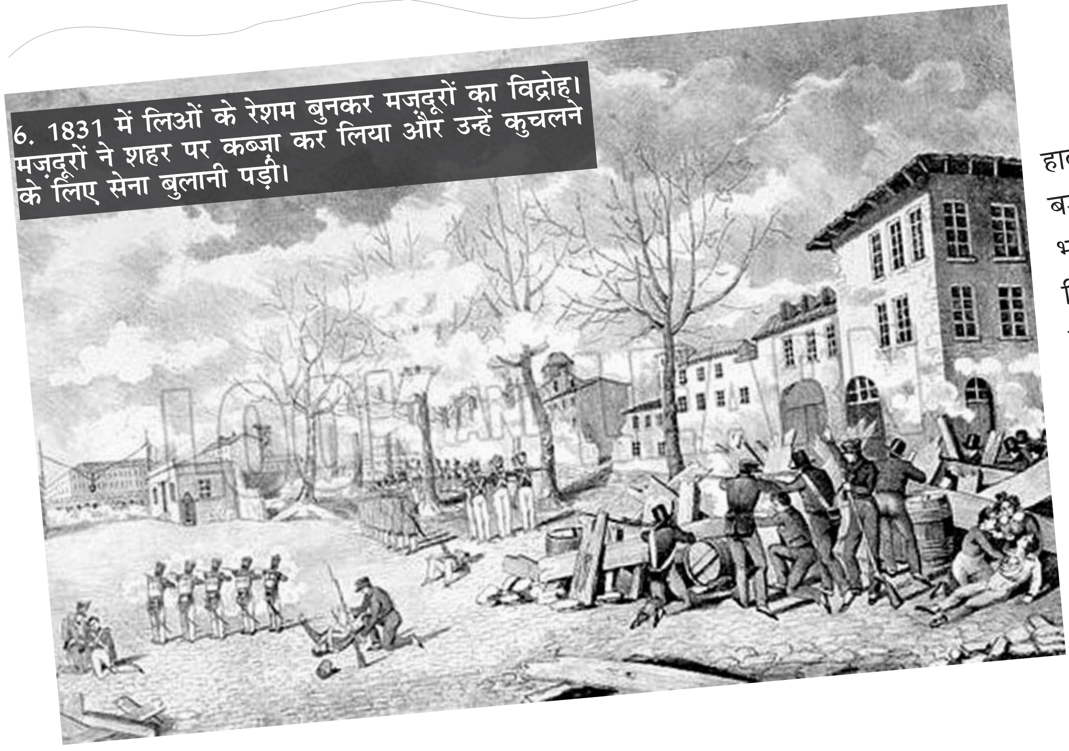

6. 1831 में लिओं के रेशम बुनकर मज़दूरों का विद्रोह। मज़दूरों ने शहर पर कब्ज़ा कर लिया और उन्हें कुचलने के लिए सेना बुलानी पड़ी।

3. यूरोप के दूसरे बड़े औद्योगिक देश, फ्रांस में भी मज़दूरों की हालत इंग्लैण्ड के मज़दूरों जैसी ही असहनीय थी। फ्रांस का दूसरा सबसे बड़ा शहर लिओं रेशम उद्योग का केन्द्र था। नवम्बर 1831 में अपनी भयंकर ग़रीबी से बेहाल बुनकर मज़दूरों ने मज़दूरी तय करने के सवाल पर विद्रोह कर दिया। हज़ारों मज़दूरों ने सेना के शस्त्रागार पर धावा बोलकर हथियार लूट लिये और फ़ौजी टुकड़ियों को पछाड़कर शहर को अपने कब्ज़े में ले लिया। उन्होंने काले बैनर लेकर जुलूस निकाला जिन पर लिखा था, "हम जीने और काम करने के अधिकार के वास्ते लड़ते-लड़ते मर जाने के लिए तैयार हैं!" राजधानी पेरिस से भेजी गयी 20,000 की सेना ने इस विद्रोह को निर्ममता के साथ कुचल दिया। लेकिन बग़ावत की आग अन्दर-अन्दर सुलगती रही। मज़दूरों की गुप्त सोसायटियों के बनने का सिलसिला शुरू हो गया जिनमें मज़दूर अपनी हालत के बारे में और उसे बदलने के लिए संघर्ष के बारे में चर्चा करते थे। सिर्फ़ तीन साल बाद, 1834 में, लिओं के बुनकर फिर विद्रोह में उठ खड़े हुए। फरवरी 1834 में, कारख़ाना मालिकों ने यह कहकर मज़दूरी घटाने की कोशिशें शुरू कर दीं कि अब मज़दूर पहले से बहुत ज़्यादा कमा रहे हैं और इससे उद्योग की बढ़ोत्तरी में रुकावट आ रही है।

इसके जवाब में, अप्रैल 1834 में मज़दूर फिर सड़कों पर उतर आये। जब उनका दमन करने की कोशिश की गयी तो उन्होंने फिर शस्त्रागार पर धावा बोलकर हथियार लूट लिये और सेना को शहर छोड़कर जाने पर मजबूर कर दिया। इस बार मज़दूर अधिक संगठित थे और उनकी माँगों में काम की बेहतर स्थितियों के साथ-साथ राजतंत्र को ख़त्म करके गणराज्य की स्थापना करने की माँग भी शामिल थी। फ्रांसीसी क्रान्ति के समय गठित राष्ट्रीय गार्ड की टुकड़ियों ने भी मज़दूरों का साथ दिया। पूरे शहर पर विद्रोहियों का कब्ज़ा हो गया। पेरिस से भेजी गयी सेना के साथ मज़दूरों की एक हफ़्ते तक लड़ाई चलती रही। तोपों से ज़बर्दस्त गोलाबारी करके और सैकड़ों मज़दूरों का क़त्लेआम करके आख़िरकार इस विद्रोह को भी कुचल दिया गया। 10,000 से ज़्यादा मज़दूरों को गिरफ़्तार करके पेरिस ले जाया गया जहाँ उन पर मुक़दमा चलाकर उन्हें कई-कई सालों की जेल या देशनिकाले की सज़ाएँ दी गयीं। इस विद्रोह ने यह दिखा दिया कि मज़दूर कितनी तेज़ी से राजनीतिक दृष्टि से जागरूक हो रहा था।

7. 1834 में लिओं के मज़दूरों की दूसरी बग़ावत को कुचलने के लिए सेना ने मज़दूरों का क़त्लेआम किया।

8. इंग्लैण्ड में खेतिहर मज़दूरों की एक यूनियन बनाने पर उसके 6 नेताओं जेम्स लवलेस, जॉन स्टैंडफील्ड, जेम्स ब्राइन, जेम्स हैमेट, जॉर्ज लवलेस, टॉमस स्टैंडफील्ड को 1834 में कड़ी सज़ाएँ सुनायी गयीं जिसका देशभर में ज़बर्दस्त विरोध हुआ। 8 लाख लोगों के हस्ताक्षर लेकर राजधानी लन्दन में एक विशाल जुलूस निकाला गया।

4. **शुरुआती दौर में** जब मज़दूरों ने अपनी माँगों के लिए हड़ताल करना शुरू किया तो उनके पस ऐसा कोई संगठन नहीं होता था जो हड़ताल के दौरान पैदा होने वाली एकजुटता को आगे भी क़ायम रख सके। मज़दूर वर्ग की सभी संस्थाएँ और संघ ग़ैर-क़ानूनी माने जाते थे इसलिए मज़दूरों ने गुप्त सोसायटियाँ बनाना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे इनकी संख्या और सक्रियता बढ़ती चली गयी। मज़दूरों के संघर्ष के कारण आख़िरकार इंग्लैण्ड की सरकार को 1824 में उन क़ानूनों को रद्द करना पड़ा जो संगठन बनाने को प्रतिबन्धित करते थे। इसके बाद जल्दी ही उद्योग की प्रत्येक शाखा में ट्रेड-यूनियनें बन गयीं जो बुर्जुआ वर्ग के अत्याचार और अन्याय से मज़दूरों को बचाने का काम करने लगीं। उनके उद्देश्य थे : सामूहिक समझौते से मज़दूरी तय कराना, मज़दूरी में यथासम्भव बढ़ोत्तरी कराना, कारखानों की प्रत्येक शाखा में मज़दूरी का समान स्तर क़ायम रखना। ऐसी कई यूनियनों ने मिलकर राष्ट्रीय स्तर पर मज़दूरों को एकजुट करने के प्रयास भी शुरू कर दिये। यूनियनों के संघर्ष के तरीके थे - हड़ताल, फिर हड़ताल तोड़ने वाले मज़दूरों का मुक़ाबला करना और यूनियन से बाहर रहने वाले मज़दूरों को शामिल होने के लिए राज़ी करना। यूनियनों की कार्रवाइयों से मज़दूरों की चेतना और संगठनबद्धता बहुत तेज़ी से बढ़ने लगी।

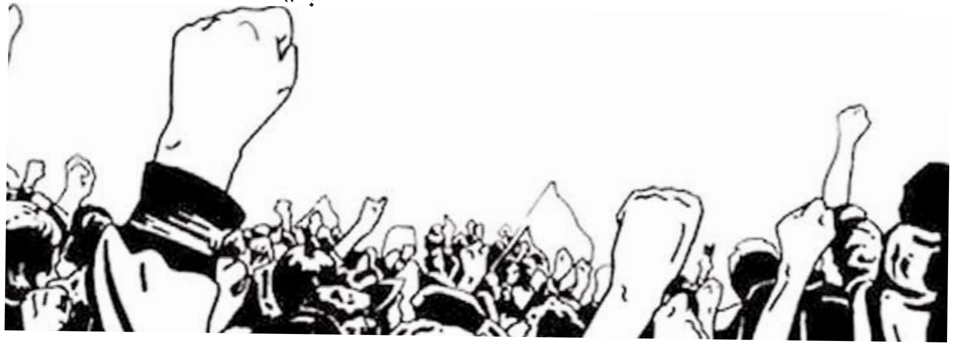

5. **हड़तालों की घोषणा,** ट्रेड यूनियनों का गठन, यूनियनों का पहले क्षेत्रीय संगठनों और बाद में राष्ट्रीय संगठनों के रूप में एक होना, और उसके बाद कई यूनियनों को मिलाकर अस्थायी संघ बनाने की कोशिश करने का काम मेहनतकशों के राजनीतिक संघर्ष के साथ-साथ चलता रहा और इसने 1836-37 के आर्थिक संकट के बाद गम्भीर हलचल का रूप धारण कर लिया। 1837 में मज़दूरों के नेताओं ने एक माँगपत्रक – चार्टर – तैयार किया जिसमें वे माँगें थीं जिन्हें संसद के सामने पेश किया जाना था। इसके बाद उन्होंने इस चार्टर पर मज़दूरों के हस्ताक्षर जुटाने शुरू किये। तीन बार – 1839, 1842 और 1848 में – यह चार्टर संसद को सौंपा गया और हर बार उस पर पहले से भी ज़्यादा हस्ताक्षर थे। पहली बार 12 लाख हस्ताक्षर जुटाये गये, दूसरी बार 33 लाख और तीसरी बार लगभग 50 लाख। इन माँगों के समर्थन में आन्दोलन करने के लिए नेशनल चार्टिस्ट एसोसिएशन की स्थापना की गयी थी। इस संगठन का मक़सद कारीगरों और मेहनतकश वर्गों की माँगों को उठाना था और इसे मज़दूरों की पहली राजनीतिक पार्टी कहा जा सकता है।

हस्ताक्षर जुटाने और माँगपत्रक से जुड़े राजनीतिक और सामाजिक सवालों पर चलने वाली बहसों के कारण मज़दूर आन्दोलन का ज़बर्दस्त विकास हुआ। मज़दूर और उनके परिवार शाम के वक्त मशालों की रोशनी में जमा होकर राजनीतिक भाषण सुनते थे और हालात पर बहस करते थे। रात के समय ब्रिटेन के शहरों की सड़कों पर चार्टिस्टों के विशाल जुलूस निकला करते थे। मज़दूरों ने पहली बार महसूस किया कि जब वे मिलकर और संगठित तरीके से कुछ करते हैं तो उनकी शक्ति कितनी ज़बर्दस्त बन जाती है। जैसे-जैसे चार्टिस्ट आन्दोलन आगे बढ़ा, मज़दूर अपनी सफलताओं और असफलताओं से शिक्षा लेते हुए अपने आसपास की दुनिया की बेहतर समझ हासिल करते गये और बहुत से भ्रमों से भी मुक्त होते गये। लेकिन चार्टिस्ट नेता अभी मज़दूर वर्ग की ऐतिहासिक भूमिका और संगठनबद्ध होने की ज़रूरत को सही ढंग से नहीं समझ पाये थे। चार्टिस्ट आन्दोलन अपने प्रभाव का पूरा उपयोग कर पाने में नाकाम रहा और 1848 के बाद उतार पर आने लगा। लेकिन यह इतिहास में सर्वहारा का पहला व्यापक राजनीतिक आन्दोलन था और वह प्रेरणादायी उदाहरण बन गया। चार्टिस्ट आन्दोलन के बाद मज़दूर वर्ग के मुक्ति-संघर्ष ने एक नयी और अधिक उन्नत मंज़िल में प्रवेश किया।

(अगले अंक में जारी)

9. चार्टिस्ट आन्दोलन के दौरान मज़दूरों की एक सभा में बोलते हुए मज़दूरों के नेता फियरगेस ओ'कॉनर

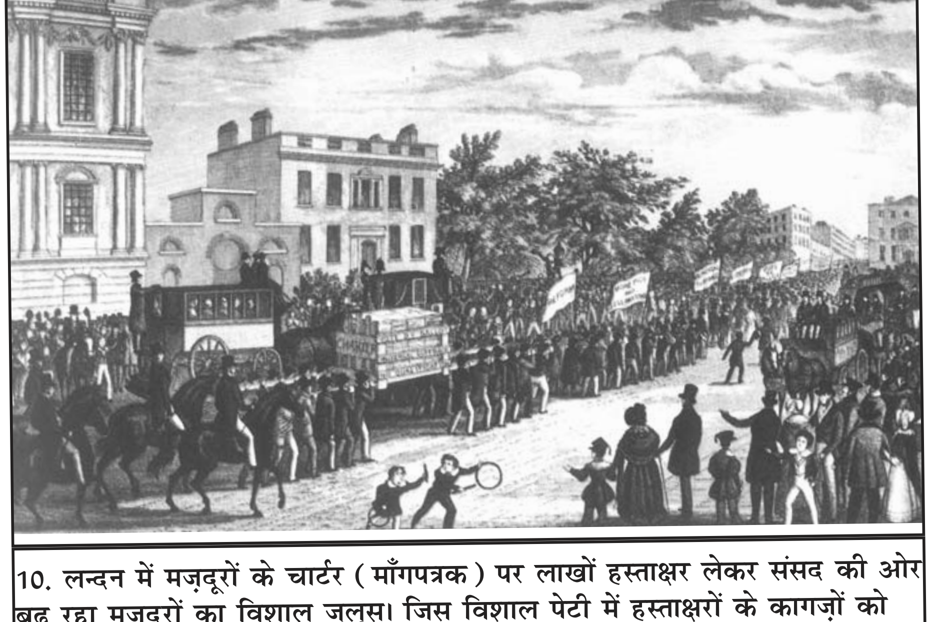

10. लन्दन में मज़दूरों के चार्टर (माँगपत्रक) पर लाखों हस्ताक्षर लेकर संसद की ओर बढ़ रहा मज़दूरों का विशाल जुलूस। जिस विशाल पेटी में हस्ताक्षरों के कागज़ों को रखा गया था उसे बीस लोगों ने कन्धे पर उठा रखा है।

11. नॉटिंघम शहर में 1842 में पुलिस के हमले का मुक़ाबला करते हुए चार्टिस्ट मज़दूर

पेरिस कम्यून : पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा

आज भारत ही नहीं, पूरी दुनिया के मज़दूर पूँजी की लुटेरी ताक़त के तेज़ होते हमलों का सामना कर रहे हैं, और मज़दूर आन्दोलन बिखराव, ठहराव और हताशा का शिकार है। ऐसे में इतिहास के पन्ने पलटकर मज़दूर वर्ग के गौरवशाली संघर्षों से सीखने और उनसे प्रेरणा लेने की अहमियत बहुत बढ़ जाती है। आज से 141 वर्ष पहले, 18 मार्च 1871 को फ्रांस की राजधानी पेरिस में पहली बार मज़दूरों ने अपनी हुकूमत क़ायम की। इसे पेरिस कम्यून कहा गया। उन्होंने शोषकों की फैलायी इस सोच को ध्वस्त कर दिया कि मज़दूर राज-काज नहीं चला सकते। पेरिस के जाँबाज़ मज़दूरों ने न सिर्फ़ पूँजीवादी हुकूमत की चलती चक्की को उलटकर तोड़ डाला, बल्कि 72 दिनों के शासन के दौरान आने वाले दिनों का एक छोटा-सा मॉडल भी दुनिया के सामने पेश कर दिया कि समाजवादी समाज में भेदभाव, ग़ैर-बराबरी और शोषण को किस तरह ख़त्म किया जायेगा। आगे चलकर 1917 की रूसी मज़दूर क्रान्ति ने इसी कड़ी को आगे बढ़ाया।

मज़दूर वर्ग के इस साहसिक कारनामे से फ्रांस ही नहीं, सारी दुनिया के पूँजीपतियों के कलेजे काँप उठे। उन्होंने मज़दूरों के इस पहले राज्य का गला घोंट देने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया और आख़िरकार मज़दूरों के कम्यून को उन्होंने ख़ून की नदियों में डुबो दिया। लेकिन कम्यून के सिद्धान्त अमर हो गये।

पेरिस कम्यून की हार से भी दुनिया के मज़दूर वर्ग ने बेशक़ीमती सबक़ सीखे। पेरिस के मज़दूरों की क़ुर्बानी मज़दूर वर्ग को याद दिलाती रहती है कि पूँजीवाद को मटियामेट किये बिना उसकी मुक्ति नहीं हो सकती।

'मज़दूर बिगुल' के पिछले अंक से हमने दुनिया के पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा की शुरुआत की है, जो अगले कई अंकों में जारी रहेगी। – **सम्पादक**

पहली किश्त में हमने जाना कि 'पूँजी की ज़ालिम, बर्बर सत्ता के ख़िलाफ़ लड़ना कैसे सीखा मज़दूरों ने'। मशीनें तोड़कर अपना गुस्सा निकालने से शुरू होकर मज़दूरों का संघर्ष चार्टिस्ट आन्दोलन तक पहुँचा। यह सर्वहारा वर्ग का पहला व्यापक आन्दोलन था और असफल होने के बावजूद यह एक प्रेरणादायी उदाहरण बन गया।!

मज़दूर वर्ग के आगे बढ़ते संघर्ष और उसकी मुक्ति की विचारधारा का जन्म

1. 1840 के दशक में इंग्लैण्ड में मज़दूर आन्दोलन दो हिस्सों में बँटा हुआ था – चार्टिस्ट और समाजवादी। चार्टिस्ट लोग सैद्धान्तिक मामलों में पिछड़े हुए थे लेकिन वे सच्चे सर्वहारा थे और अपने वर्ग के प्रतिनिधि थे। दूसरी ओर समाजवादी ज़्यादा दूर तक देखने वाले थे और मज़दूरों की दशा सुधारने के लिए व्यावहारिक तरीक़े प्रस्तावित करते थे लेकिन वे बुर्जुआ वर्ग से आते थे और इसलिए मज़दूरों के साथ पूरी तरह घुलमिल नहीं पाते थे। जैसा कि फ्रेडरिक एंगेल्स ने लिखा है, चार्टिज़्म और समाजवाद की एकता मज़दूर आन्दोलन का अगला क़दम था और इसकी शुरुआत उसी समय हो चुकी थी। मज़दूर अपनी लड़ाई में विचारों के महत्व को समझने लगे थे और ट्रेड यूनियनें, चार्टिस्ट और समाजवादी, सभी अलग-अलग या मिलकर मज़दूरों के लिए अनगिनत स्कूल, पुस्तकालय, रीडिंग-रूम आदि चलाते थे। पूँजीवादी सरकारें इन्हें ख़तरनाक समझती थीं और अक्सर इन्हें बन्द भी कर दिया जाता था। लेकिन मज़दूरों के बीच धीरे-धीरे बढ़ती राजनीतिक चेतना को फैलने से रोका नहीं जा सकता था।

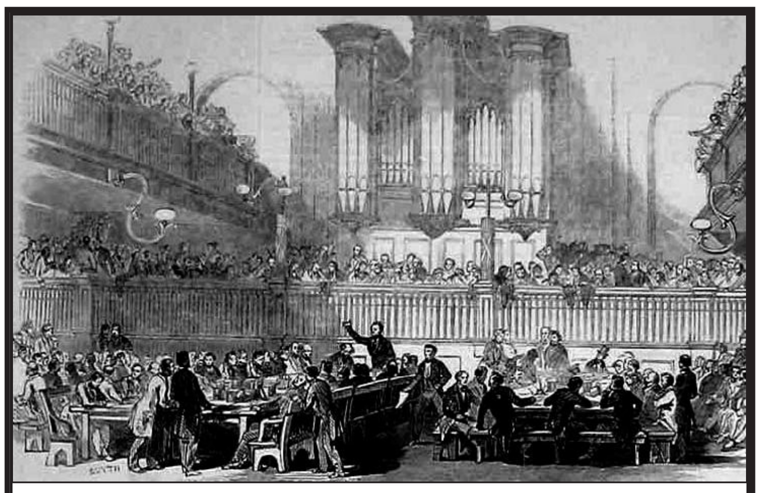

1848 में लन्दन में एक चौराहे पर मज़दूरों की "साहित्यिक एवं वैज्ञानिक संस्था" की बैठक

1844 में जर्मनी में कपड़ा उद्योग के प्रमुख केन्द्र सिलेसिया प्रान्त में बढ़ती ग़रीबी और भुखमरी से तंग आकर हज़ारों बुनकर मज़दूरों ने विद्रोह कर दिया। उन्होंने शहर पर कब्ज़ा कर लिया और उन्हें कुचलने के लिए सेना को बुलाना पड़ा। 11 मज़दूरों को गोली से उड़ाने और सैकड़ों को जेल और कोड़ों की सज़ाएँ दी गयीं। यह विद्रोह मज़दूर आन्दोलन के इतिहास में बहुत महत्व रखता है क्योंकि सिलेसियाई बुनकरों की माँगों और नारों तथा उनकी कार्रवाइयों से पता चलता था कि समाज में मज़दूरों की स्थिति और उनकी भूमिका के बारे में उनकी समझ तेज़ी से बढ़ रही थी। दायीं ओर के चित्र अपनी माँगें पेश करने के लिए जाते हुए बुनकरों को दिखाया गया है। इसे जर्मनी की प्रसिद्ध चित्रकार और मज़दूर आन्दोलन की प्रबल समर्थक कैथी कॉलवित्ज़ ने बनाया था।

2. **मज़दूर आन्दोलन** की एक मज़बूत धारा बनने के काफ़ी पहले ही समाजवाद का विचार पैदा हो चुका था। लेकिन इसे "काल्पनिक" समाजवाद कहा गया क्योंकि इसके पीछे कोई वैज्ञानिक सोच और रास्ते की सही समझ नहीं थी। उस दौर के बहुत-से प्रगतिशील लोगों को उम्मीद थी कि राजाओं-जागीरदारों-सामन्तों के उत्पीड़न का अन्त होगा तो विवेक, स्वतन्त्रता और न्याय का राज क़ायम होगा। लेकिन वास्तव में सामन्ती अत्याचार और ज़ोर-ज़बर्दस्ती का स्थान निर्मम पूँजीवादी शोषण और धन-सम्पत्ति के शासन ने ले लिया। पूँजीवादी विकास के उस शुरुआती दौर में ही कई ऐसे विचारक और दूरदर्शी लोग थे जिन्होंने पूँजीवादी व्यवस्था की बुराइयों को समझ लिया था और एक ऐसी व्यवस्था के लिए आवाज़ उठायी थी जो सबके लिए इंसाफ़ और भाईचारे पर टिकी होगी।

सेण्ट-साइमन

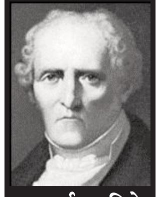

चार्ल्स फूरिये

रॉबर्ट ओवेन

इन महान चिन्तकों में सबसे ऊँचा स्थान फ्रांस के सेण्ट-साइमन और इंग्लैण्ड के चार्ल्स फूरिये तथा रॉबर्ट ओवेन का है। इन लोगों ने पूँजीवादी दुनिया कठोर और सही आलोचना की और इसके स्थान पर भविष्य के न्यायपूर्ण समाज की तस्वीर पेश की। सबसे बढ़कर, उन्होंने आम लोगों को पूँजीवादी दासता की बेड़ियों से अपने को मुक्त करने के लिए ललकारा। लेकिन वे यह नहीं समझ पाये कि पूँजीवाद को हटाकर नया समाज लाने का सही रास्ता क्या होगा। उन्होंने जो कुछ सुझाया वह भोलेपन से भरा हुआ और अव्यावहारिक सपना था। अभी इन लोगों को यह विश्वास नहीं था कि मज़दूर वर्ग ही वह सामाजिक शक्ति है जो शोषण की ज़ंजीरों को तोड़कर खुद को भी मुक्त करेगा और पूरी मानवजाति को भी मुक्ति दिलायेगा। वे सोचते थे कि समाज के प्रबुद्ध लोगों की यह ज़िम्मेदारी है कि वे मज़दूरों का इस दुर्दशा से उद्धार करें। लेकिन इन महान चिन्तकों के काम के बिना मज़दूरों की मुक्ति का वैज्ञानिक सिद्धान्त भी पैदा नहीं हो सकता था।

रॉबर्ट ओवेन द्वारा स्थापित बस्ती 'न्यू लेनार्क' - यहाँ एक विशाल सूती मिल थी जिसमें काम करने वाले 2500 मज़दूर और उनके परिवार रहते थे जिन्हें लेकर ओवेन ने समाजवाद के अपने आदर्श को लागू करने के प्रयोग किये।

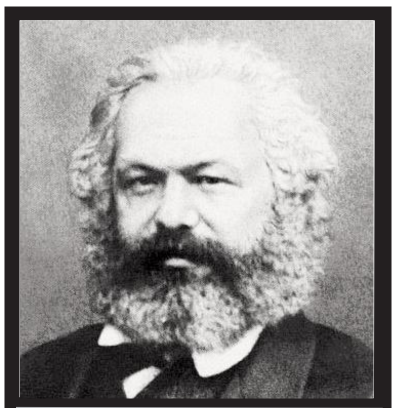

कार्ल मार्क्स (जन्म 5 मई, 1848; निधन 14 मार्च 1883) ने नौजवानी से ही अपना पूरा जीवन मज़दूरों की मुक्ति की लड़ाई को समर्पित कर दिया। अपने क्रान्तिकारी विचारों के कारण उन्हें 25 साल की उम्र में ही अपना देश छोड़ना पड़ा और उनके शेष जीवन का ज़्यादा समय पराये मुल्कों में ही बीता। हर देश की पूँजीवादी सरकारें उनसे भय खाती थीं लेकिन सारी दुनिया के मेहनतकशों से उन्हें अपार प्यार और सम्मान मिला।

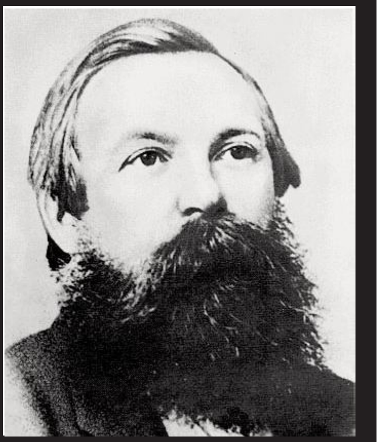

फ्रेडरिक एंगेल्स (जन्म 25 नवम्बर, 1820; निधन 5 अगस्त 1895) एक कारख़ानेदार के बेटे थे जिन्होंने अपने पिता की इच्छाओं का पालन करने और अपनी शक्ति पैसा कमाने में लगाने के बजाय अपनी सारी ऊर्जा क्रान्तिकारी संघर्ष को समर्पित कर दी। मार्क्स और एंगेल्स की मुलाकात 1844 में हुई और उसके बाद सर्वहारा के इन दो महान नेताओं की ऐसी अटूट मित्रता की शुरुआत हुई जो इतिहास की एक मिसाल बन गयी है। दोनों ने अपनी सारी प्रतिभा, अपनी ऊर्जा की एक-एक बूँद पूँजी की दासता से मानवता की मुक्ति के लक्ष्य को आगे बढ़ाने में लगा दी।

3. जब मज़दूर आन्दोलन ने काफ़ी अनुभव हासिल कर लिया और मज़दूर वर्ग ज़्यादा अच्छी तरह संगठित हो गया तभी एक ऐसा वैज्ञानिक सिद्धान्त सामने आया जो मानवता को मुक्ति की सही राह पर ले जा सकता था।ण्इस सिद्धान्त ने दिखाया कि अब तक का सामाजिक विकास किन मंज़िलों से होकर हुआ है और समाज विकास की सबसे ऊँची मंज़िल कम्युनिज़्म तक जाने का रास्ता क्या होगा। इस सिद्धान्त के सृजक थे मज़दूर वर्ग के महान नेता कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स।ण्जर्मनी में जन्मे इन दो अद्भुत प्रतिभाशाली व्यक्तियों ने नौजवानी की शुरुआत में ही अपने आपको तन-मन से क्रान्तिकारी संघर्ष के लिए समर्पित कर दिया। मार्क्स और एंगेल्स ने वैज्ञानिक समाजवाद का सिद्धान्त प्रस्तुत किया और सर्वहारा के संघर्ष की कार्यनीति बनायी। उन्होंने कहा, "सर्वहारा के पास खोने के लिए अपनी बेड़ियों के सिवा और कुछ नहीं है।" मार्क्सवाद ने दिखाया कि सर्वहारा सबसे क्रान्तिकारी वर्ग और यह निजी मालिकाने की समूची व्यवस्था को नष्ट करने के संघर्ष में सारे मेहनतकश अवाम की अगुवाई करेगा। लेकिन यह नया सिद्धान्त दुनिया को बदलने वाली ज़बर्दस्त ताक़त तभी बन सकता था जब वह जनता के दिलो-दिमाग़ पर छा जाये।

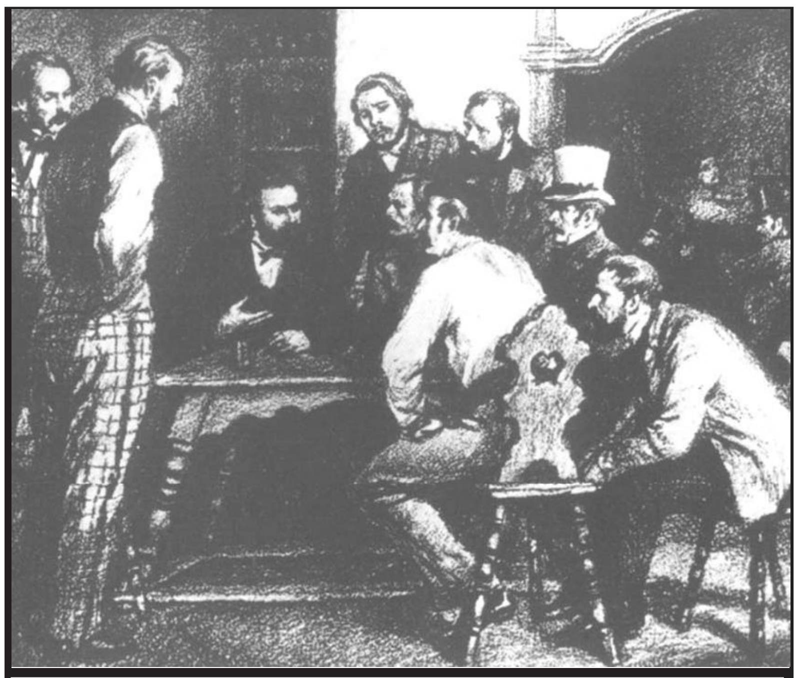

1844 में विभिन्न समाजवादी मण्डलियों के साथ विचार-विमर्श करते हुए मार्क्स और एंगेल्स

4. **मार्क्स और एंगेल्स से पहले** मज़दूर आन्दोलन और समाजवाद का विकास अलग-अलग रास्तों से हो रहा था। 1847 में मार्क्स और एंगेल्स के सक्रिय सहयोग से पहले अन्तरराष्ट्रीय सर्वहारा संगठन – कम्युनिस्ट लीग – की स्थापना की गयी। अब एक नया नारा दिया गया – "दुनिया के मज़दूरो, एक हो!" इसी लीग की तरफ़ से मार्क्स-एंगेल्स ने 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' तैयार किया जो फ़रवरी 1848 में छपकर आया। इस छोटी-सी पुस्तिका ने पिछले 160 वर्षों में दुनिया को बदल डाला है। आज दुनिया की लगभग हर भाषा में इसकी करोड़ों-करोड़ प्रतियाँ छप चुकी हैं। लेकिन जब यह पहले पहल छपा था, तभी "कम्युनिस्ट घोषणापत्र" ने ज़बर्दस्त असर पैदा किया। इसके बाद मज़दूर आन्दोलन और समाजवाद दो अलग-अलग धाराएँ नहीं रह गये और आपस में मिलकर एक अपराजेय शक्ति बन गये।

'कम्युनिस्ट लीग' की केन्द्रीय समिति की बैठक, सबसे दायें बैठे हुए कार्ल मार्क्स।

'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' के पहले संस्करण का आवरण पृष्ठ

5. उन्नीसवीं सदी के चौथे दशक में कई जनविद्रोहों को सख़्ती से कुचल दिये जाने के बाद यूरोप में सामाजिक और राजनीतिक प्रतिक्रिया और दमनकारी पुलिस शासन का दौर आ गया। मगर दमन के कारण लम्बे से दबी पड़ी सामाजिक मुक्ति की शक्तियाँ लगातार मज़बूत होती जा रही थीं। 1848 में ज्वालामुखी फूट पड़ा। सारा यूरोप क्रान्तिकारी उथल-पुथल की चपेट में आ गया जिसकी अगली कतारों में हर जगह मज़दूर वर्ग था। क्रान्ति का पहला विस्फोट सिसिली में हुआ लेकिन एक-एक करके यह क्रान्तिकारी ज्वार फ्रांस, आस्ट्रिया, रूस, जर्मनी, इटली, स्पेन, हंगरी, पोलैण्ड आदि से होते हुए सारे यूरोप में फैल गया और घृणित निरंकुश राजनीतिक व्यवस्थाओं, सम्राटों और मंत्रियों को अपने साथ बहा ले गया।

लेकिन शानदार बहादुराना संघर्ष के बावजूद मेहनतकश जनता को आख़िरकार हार का मुँह देखना पड़ा। मज़दूरों की बढ़ती ताकत और लड़ाकू चेतना से घबराये पूँजीपति वर्ग ने हर ग़द्दारी और धोखाधड़ी की और क्रान्तिकारी आन्दोलन की पीठ में छुरा भोंकने का काम किया। दूसरी तरफ़, सर्वहारा वर्ग की कमज़ोरी का मूल कारण यह था कि ज़बर्दस्त क्रान्तिकारी जोश के बावजूद न तो वह अच्छी तरह संगठित था और न ही उसे अपने ऐतिहासिक कार्यभार और लक्ष्य की सही समझ थी। 1848 की क्रान्तियों का अन्त पराजय में हुआ लेकिन उन्होंने यूरोप के आने वाले इतिहास को बदलकर रख दिया। साथ ही इन क्रान्तियों ने यूरोप के सर्वहारा को राजनीतिक संघर्ष का अमूल्य अनुभव प्रदान किया। उन्होंने दिखा दिया कि एक बड़े और ताक़तवर सामाजिक वर्ग के रूप में सर्वहारा के सामने आने के बाद अब बुर्जुआ वर्ग ज़रा भी प्रगतिशील नहीं रह गया है और एक प्रतिक्रान्तिकारी शक्ति के रूप में बदल चुका है।

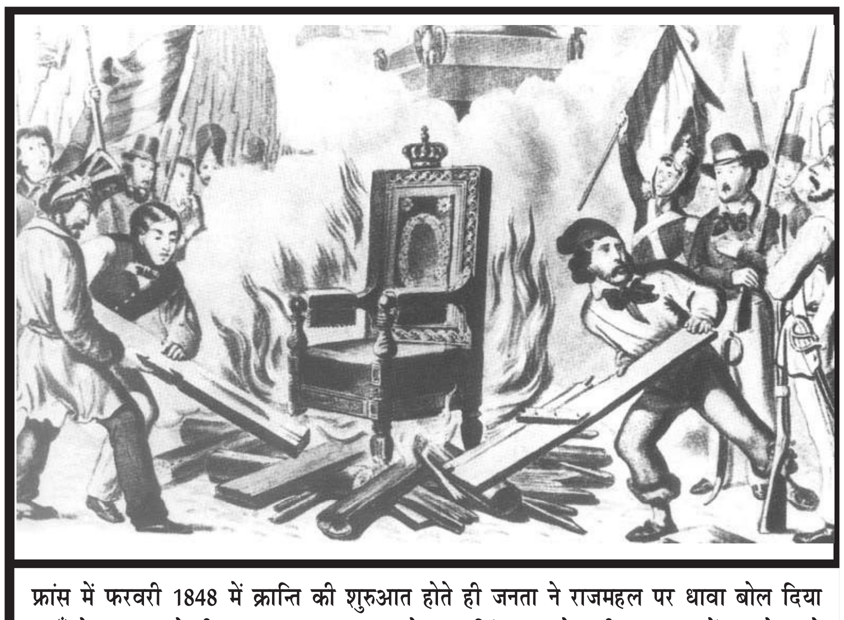

फ्रांस में फरवरी 1848 में क्रान्ति की शुरुआत होते ही जनता ने राजमहल पर धावा बोल दिया जहाँ से राजा पहले ही भाग खड़ा हुआ था। लोग राजसिंहासन को घसीटकर सड़कों पर ले आये और उसे आग के हवाले कर दिया।

1848 की क्रान्तियों के दौरान लुटेरे और अत्याचारी शासक को जनता ने लात मारकर किनारे कर दिया। उस समय का एक प्रसिद्ध कार्टून। उन्हीं दिनों विख्यात रूसी क्रान्तिकारी लेखक अलेक्सान्द्र हर्ज़ेन ने लिखा था: **"यह अद्भुत समय है। अखबार उठाते हुए मेरे हाथ कँपकँपाने लगते हैं – हर दिन कोई न कोई अप्रत्याशित बात होती रहती है, बिजली का नया गर्जन सुनायी पड़ता है। या तो मानव जाति का नया उज्ज्वल पुनर्जन्म होने वाला है या क़यामत का दिन आ रहा है। लोगों के दिलों में नयी ताक़त आ गयी है, पुरानी आशाएँ फिर जाग उठी हैं और एक ऐसा साहस फिर हावी हो गया है जो कि सभी कुछ कर सकता है।"**

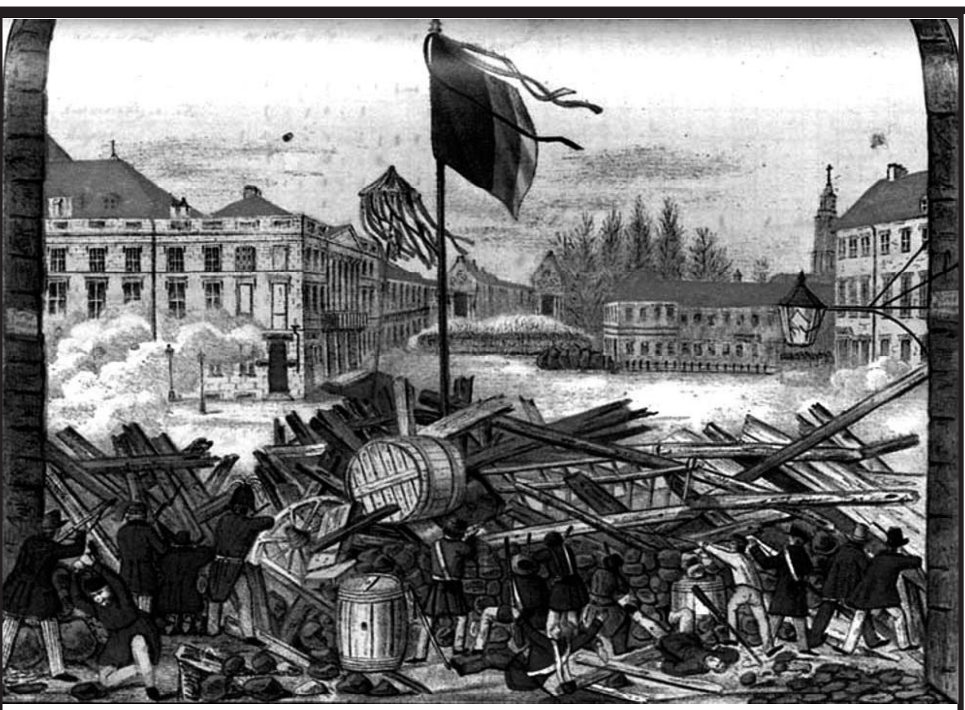

पेरिस में जून विद्रोह के समय सड़कों पर मोर्चा लेते हुए मज़दूर। इन घटनाओं के साक्षी रहे मार्क्स ने लिखा है: "मज़दूरों के पास और कोई विकल्प नहीं था – वे या तो भूखों मरते या संघर्ष करते। उन्होंने 22 जून के प्रचण्ड विप्लव से जवाब दिया, जो आधुनिक समाज को विभाजित करने वाले दोनों वर्गों के बीच होने वाला पहला बड़ा युद्ध था। यह बुर्जुआ व्यवस्था के संरक्षण या संहार का युद्ध था।" पूँजीपतियों की सरकार ने बर्बर दमन किया। सड़कों पर लड़ाई के दौरान 500 मज़दूर मारे गये थे। लेकिन उसके बाद के कुछ महीनों में 11 हज़ार मज़दूरों को गोली से उड़ा दिया गया।

6. मज़दूरों ने अपने संगठन स्थापित करने शुरू कर दिये। हड़तालें अधिकाधिक आम होती गयीं। समाजवादी मण्डलियों और दलों की स्थापना होने लगी और मज़दूरों ने अब अपनी समस्याओं को अपने ही कारख़ाने, शहर या देश के तंग नज़रिये से देखना बन्द कर दिया। उन्नीसवीं सदी के सातवें दशक तक मज़दूर आन्दोलन अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी शक्तियों को एकजुट करने के लिए तैयार हो चुका था। अब मेहनतकश अवाम को एक नये अन्तरराष्ट्रीय संगठन में एकताबद्ध करने का समय आ गया था।

28 सितम्बर, 1864 को लन्दन में हुई एक सभा में, जिसमें ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, इटली तथा कई अन्य देशों के मज़दूरों ने भाग लिया था, अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संघ (इण्टरनेशनल वर्किंग मेन्स एसोसिएशन) की स्थापना की गयी, जो इतिहास में पहले इण्टरनेशनल के नाम से प्रसिद्ध है। कार्ल मार्क्स तथा फ्रेडरिक एंगेल्स आन्दोलन के मुख्य राजनीतिक और वैचारिक नेता थे। यूरोप के विभिन्न देशों और अमेरिका के अनेक ट्रेड यूनियन, मज़दूर सोसायटियाँ, श्रमिक शिक्षण मण्डल तथा अन्य मज़दूर संगठन पहले इण्टरनेशनल में शामिल हो गये। इन सभी देशों में अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संघ की राष्ट्रीय शाखाएँ स्थापित हो गयीं और थोड़े ही समय में इण्टरनेशनल एक व्यापक अन्तरराष्ट्रीय सर्वहारा संगठन बन गया। उस समय भारत में अभी कारख़ाने लगने शुरू ही हुए थे और मज़दूर बहुत कम संख्या में तथा बिखरे हुए थे। लेकिन करीब 20 वर्ष बाद, जब यहाँ बहुत से उद्योग लग चुके थे जिनमें बड़ी संख्या में मज़दूर काम करने लगे थे, तो इण्टरनेशनल ने अपने दो प्रतिनिधियों को भारत के मज़दूरों के बीच संगठित होने की चेतना फैलाने के लिए कलकत्ता भेजा था।

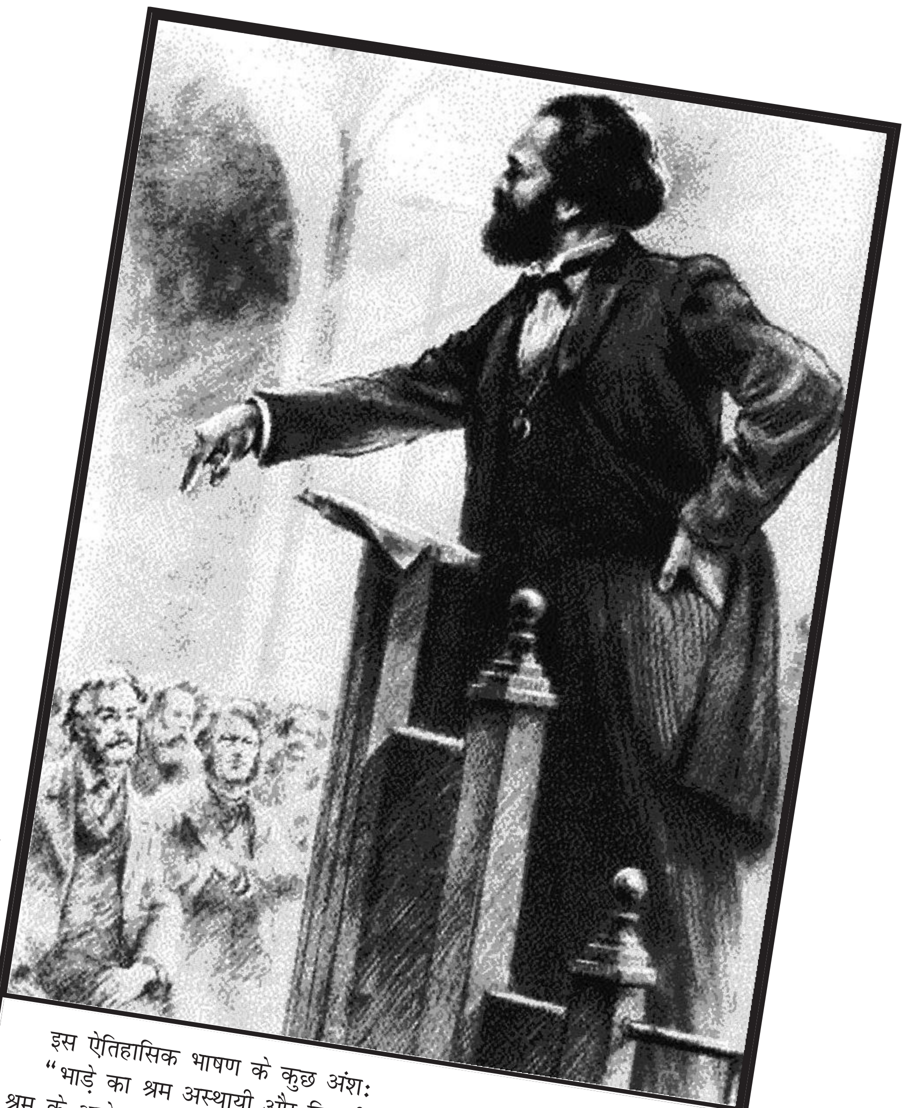

इस ऐतिहासिक भाषण के कुछ अंश:

"भाड़े का श्रम अस्थायी और निचली कोटि का रूप है जिसे ऐसे सहयोगपूर्ण श्रम के आगे खत्म हो जाना है जो इच्छापूर्वक, तत्पर मस्तिष्क और प्रसन्न हृदय के साथ किया जायेगा..."

"बड़े पैमाने पर, और आधुनिक विज्ञान के अनुसार चलने वाला उत्पादन मालिकों के वर्ग की मौजूदगी के बिना भी चलाया जा सकता है..."

"उनके (मज़दूरों के–सं.) पास सफलता का एक तत्व है – उनकी संख्या। लेकिन संख्या तभी कारगर होती है जब वह आपस में मिलकर एकताबद्ध हो और ज्ञान उसका नेतृत्व करता हो..."

"इसलिए राजनीतिक सत्ता पर कब्ज़ा करना मेहनतकश वर्गों का महान लक्ष्य बन गया है।"

इस भाषण का अन्त इन शब्दों से हुआ: "दुनिया के मज़दूरो, एक हो।"

कम्यून ज़िन्दाबाद!

अगले अंक से कम्यून की स्थापना और उसके अमर सिद्धान्तों के जन्म की कहानी...

पेरिस कम्यून : पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा (तीसरी किश्त)

आज भारत ही नहीं, पूरी दुनिया के मज़दूर पूँजी की लुटेरी ताक़त के तेज़ होते हमलों का सामना कर रहे हैं, और मज़दूर आन्दोलन बिखराव, ठहराव और हताशा का शिकार है। ऐसे में इतिहास के पन्ने पलटकर मज़दूर वर्ग के गौरवशाली संघर्षों से सीखने और उनसे प्रेरणा लेने की अहमियत बहुत बढ़ जाती है। आज से 141 वर्ष पहले, 18 मार्च 1871 को फ्रांस की राजधानी पेरिस में पहली बार मज़दूरों ने अपनी हुकूमत क़ायम की। इसे पेरिस कम्यून कहा गया। उन्होंने शोषकों की फैलायी इस सोच को ध्वस्त कर दिया कि मज़दूर राज-काज नहीं चला सकते। पेरिस के जाँबाज़ मज़दूरों ने न सिर्फ़ पूँजीवादी हुकूमत की चलती चक्की को उलटकर तोड़ डाला, बल्कि 72 दिनों के शासन के दौरान आने वाले दिनों का एक छोटा-सा मॉडल भी दुनिया के सामने पेश कर दिया कि समाजवादी समाज में भेदभाव, ग़ैर-बराबरी और शोषण को किस तरह ख़त्म किया जायेगा। आगे चलकर 1917 की रूसी मज़दूर क्रान्ति ने इसी कड़ी को आगे बढ़ाया।

मज़दूर वर्ग के इस साहसिक कारनामे से फ्रांस ही नहीं, सारी दुनिया के पूँजीपतियों के कलेजे काँप उठे। उन्होंने मज़दूरों के इस पहले राज्य का गला घोंट देने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया और आख़िरकार मज़दूरों के कम्यून को उन्होंने ख़ून की नदियों में डुबो दिया। लेकिन कम्यून के सिद्धान्त अमर हो गये।

पेरिस कम्यून की हार से भी दुनिया के मज़दूर वर्ग ने बेशक़ीमती सबक़ सीखे। पेरिस के मज़दूरों की कुर्बानी मज़दूर वर्ग को याद दिलाती रहती है कि पूँजीवाद को मटियामेट किये बिना उसकी मुक्ति नहीं हो सकती।

'मज़दूर बिगुल' के मार्च 2012 अंक से हमने दुनिया के पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा की शुरुआत की है, जो अगले कई अंकों में जारी रहेगी। – **सम्पादक**

मेहनतकशों के ख़ून से लिखी पेरिस कम्यून की अमर कहानी

पिछली दो किश्तों में हमने जाना कि 'पूँजी की ज़ालिम, बर्बर सत्ता के ख़िलाफ़ लड़ना कैसे सीखा मज़दूरों ने'। मशीनें तोड़कर अपना गुस्सा निकालने से शुरू होकर मज़दूरों का संघर्ष चार्टिस्ट आन्दोलन तक पहुँचा। यह सर्वहारा वर्ग का पहला व्यापक आन्दोलन था और असफल होने के बावजूद यह एक प्रेरणादायी उदाहरण बन गया। फिर 1848 की क्रान्तियों में मज़दूर वर्ग ने बढ़चढ़कर हिस्सा लिया और बहुत भारी कुर्बानियाँ देकर बेशक़ीमती सबक़ सीखे। हमने कम्युनिस्ट लीग के गठन, कम्युनिस्ट घोषणापत्र लिखे जाने और मज़दूरों के पहले अन्तरराष्ट्रीय संगठन के गठन के बारे में जाना। इस अंक में हम पेरिस कम्यून की पूरी कहानी को एक बार थोड़े शब्दों में पाठकों के सामने रख दे रहे हैं। इस महागाथा के एक-एक पहलू के बारे में अगले कई अंकों में हम विस्तार से बतायेंगे।

1. 1870 की गर्मियों में फ़्रांसीसी पूँजीपति वर्ग ने देश को प्रशिया के साथ युद्ध में उतार दिया। सरकार और फ़ौज के नेता भ्रष्ट थे। एक के बाद एक कई लड़ाइयों में फ़्रांस की हार हुई। आख़िरकार, सितम्बर में, 80,000 अप्रशिक्षित और जर्जर हथियारों से लैस लोगों को प्रशिया की सुसंगठित और सुसज्जित सेना के सामने झोंक दिया गया। फ़्रांसीसी घेर लिये गये और बुरी तरह परास्त हुए। नेपोलियन तृतीय और उसकी लगभग आधी सेना क़ैद कर ली गयी। पेरिस की रक्षा कर रही सेना का भी यही हाल हुआ। प्रशिया वाले राजधानी पर चढ़ आये! परन्तु नगर की मेहनतकश जनता "नेशनल गार्ड" का गठन कर चुकी थी। उन्हें खाने के लाले पड़े हुए थे। नानबाई की दुकानों के सामने रोटी के लिए लम्बी क़तारें लगी रहती थीं। मगर उन्होंने शहर की हिफ़ाज़त के लिए कई तोपें हासिल कीं और उन्हें पेरिस के परकोटों पर जमा दिया। पेरिस के अमीरों को लगा कि मज़दूरों की इस कार्रवाई में उनके लिए भी उतना ही ख़तरा है जितना प्रशियाइयों के लिए है। जनता का क्रान्तिकारी जोश जागृत हो चुका था और बाहर के दुश्मनों पर तनी उनकी संगीनें उतनी ही आसानी से भीतरी दुश्मनों की तरफ़ भी मुड़ सकती थीं। अमीरों के इशारे पर जनता से तोपें छीनने की कोशिश की गयी। फ़ौरन चेतावनी का संकेत दिया गया : पूरे शहर के मज़दूर, जिसमें स्त्रियाँ भी थीं और पुरुष भी, तोपों की रक्षा के लिए निकल पड़े। और सरकारी सैनिक इन रक्षकों पर हमला करने के बजाय इनके साथ आ खड़े हुए।

पेरिस की रक्षा के लिए मज़दूरों और नेशनल गार्ड ने बहुत-सी तोपों को अपने कब्ज़े में लेकर पेरिस में जगह-जगह तैनात कर दिया। मोन्तमार्त्र पहाड़ी पर लगी ऐसी ही एक तोप। 18 मार्च 1871 को मन्त्री थियेर ने अपने सैनिकों को सारी तोपें मज़दूरों और नेशनल गार्ड के कब्ज़े से छीन लेने का आदेश दिया। इसी के विरोध से पेरिस में मज़दूरों के विद्रोह की शुरुआत हुई।

2. **18 मार्च, 1871** को पेरिस कम्यून, यानी मज़दूरों के राज की घोषणा कर दी गयी। सरकार अपनी फ़ौजी टुकड़ियों के साथ भागकर पेरिस से कुछ दूर वर्साय के महलों में चली गयी। कम्युनार्डों ने उन्हें जाने दिया, जबकि इन सैनिकों को वे अपने पक्ष में कर सकते थे। उन्हें नगर के उन अमीरों को, जो पेरिस से भाग रहे थे, बन्धक बना लेना चाहिए था, मगर उन्होंने ऐसा नहीं किया। अपनी इस उदारता की उन्हें बहुत भारी क़ीमत चुकानी पड़ी। एरोनदिसमेण्ट या ज़िलों में बँटे पेरिस महानगर पर अब कम्युनार्ड दस्तों का क़ब्ज़ा था – इसमें स्त्री-पुरुष, मज़दूर और बुद्धिजीवी सभी शामिल थे – जो लेनिन के शब्दों में, "एक नये प्रकार के राज्य – मज़दूरों के राज्य" का निर्माण कर रहे थे। इस नये राज्य की घोषणाएँ पढ़ने के लिए सड़कों पर लोगों की भीड़ लग जाती – चर्च का सत्ता से अलगाव, नानबाई की दुकानों में रात में काम करने की मनाही, ग़रीबों का पिछला किराया रद्द, पादरियों की गिरफ़्तारी, उजड़ गयी फ़ैक्टरियों को फिर से चालू करना, मज़दूरों के ख़िलाफ़ जुर्माने का ख़ात्मा।

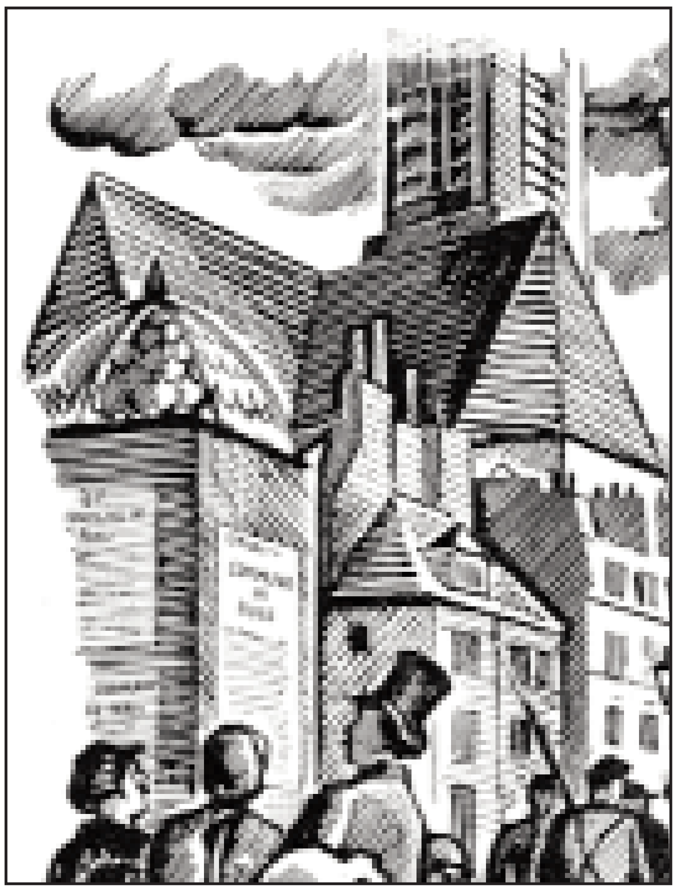

कम्यून के फ़ैसलों की घोषणा होते ही उन्हें पढ़ने के लिए पेरिस के मेहनतकशों की भीड़ लग जाती थी। एक दीवार पर चिपकायी गयी घोषणाओं को पढ़ते हुए मेहनतकश लोग।

26 मार्च 1871 को जनता द्वारा चुनी गयी कमेटी ने पेरिस कम्यून की स्थापना की घोषणा कर दी। सारे पेरिस के मज़दूरों में उत्साह की लहर दौड़ गयी। उन्होंने हर हाल में कम्यून की रक्षा का संकल्प लिया।

3. दुनिया की इस पहली मजदूर सरकार की स्थापना पूंजीवादी राज्य की नौकरशाही को पूरी तरह भंग करके सच्चे सार्विक मताधिकार के बाद हुई, जिसके चलते दर्जी, नाई, मोची, प्रेस मजदूर–ये सभी कम्यून के सदस्य चुने गये। कम्यून को कार्यपालिका और विधायिका, यानी सरकार और संसद–दोनों का ही काम करना था। पुरानी पुलिस और सेना को भंग कर दिया गया और पूरी मेहनतकश जनता को शस्त्र-सज्जित करने का काम शुरू किया गया। सत्तासीन होने के महज दो दिन बाद ही पुरानी सरकार के सभी बदनाम कानूनों को कम्यून ने रद्द कर दिया। कम्यून ने पहली बार वास्तविक धर्मनिरपेक्ष जनवाद को साकार करते हुए यह घोषणा की कि धर्म हर आदमी का निजी मामला है और राज्य या सरकार को इससे एकदम अलग रखा जायेगा। कम्यून में महत्वपूर्ण से महत्वपूर्ण ओहदे और ज़िम्मेदारी वाले व्यक्ति को भी कोई विशेषाधिकार नहीं हासिल था। मजदूर और अफ़सरों-मंत्रियों की तनख़्वाहों में पूँजीवादी हुकूमत के दौरान जो आकाश-पाताल का अन्तर था, उसे ख़त्म कर दिया गया। पेरिस कम्यून में आम मेहनतकश जनसमुदाय वास्तविक स्वामी और शासक था। जब तक कम्यून क़ायम रहा, जन समुदाय व्यापक पैमाने पर संगठित था और सभी अहम राजकीय मामलों पर लोग अपने-अपने संगठनों में विचार-विमर्श करते थे।

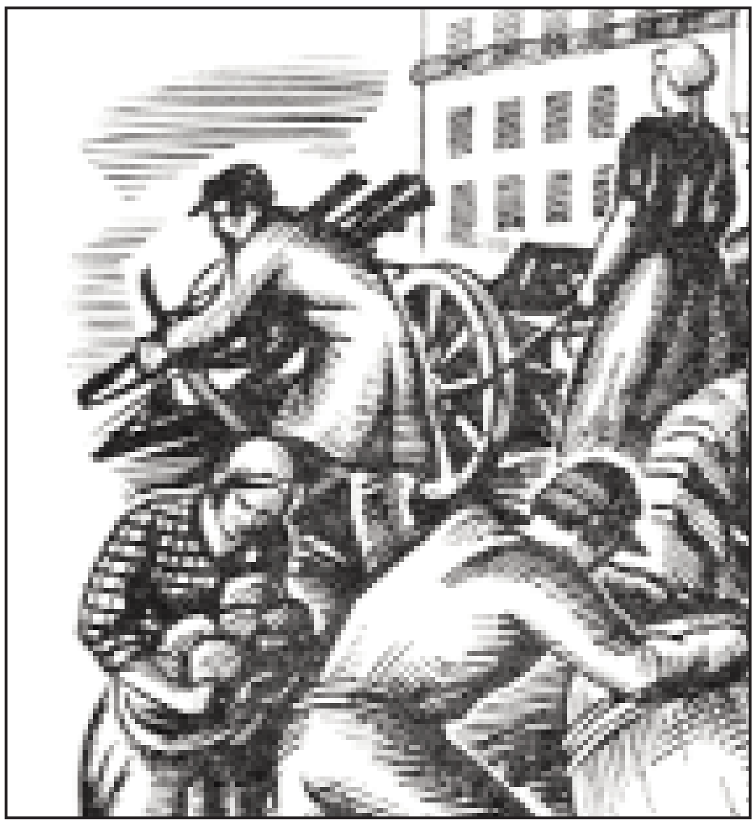

मज़दूरों ने कम्यून की रक्षा के लिए पेरिस में जगह-जगह सड़कों पर बैरिकेड खड़े करके सरकारी सेना से मोर्चा लेने की तैयारी शुरू कर दी। इनमें स्त्रियाँ भी अगली कतारों में थीं।

वीर कम्युनार्डों ने सेना का ज़बर्दस्त मुकाबला किया। एक बैरिकेड पर लड़ती हुई स्त्री मज़दूर।

4. इसी दरम्यान वर्साय में बादशाह का मन्त्री थियेर और उसकी प्रतिक्रियावादी सरकार प्रशियाई अधिकारियों की सहायता से पेरिस कम्यून पर आक्रमण करने की योजना बना रही थी। इस हमले के लिए प्रशिया ने हज़ारों की संख्या में क़ैद फ़्रांसीसी सैनिकों को लौटाने का समझौता किया था। इन सैनिकों को हथियारबन्द करके मज़दूरों के ख़िलाफ़ इस्तेमाल किया जाना था। प्रशिया और फ्रांस के शासक जो आपस में युद्ध में उलझे हुए थे, मज़दूरों को कुचलने के लिए बेशर्मी के साथ एक हो गये थे। दूसरी ओर, कम्युनार्ड भी अपनी तैयारी कर रहे थे। सड़कों पर बैरिकेड खड़े कर दिये गये। स्त्रियों और पुरुषों ने मिलकर इन्हें खड़ा किया और उन पर मोर्चा सँभाल लिया। लेकिन वे समूचे शहर पर क़ब्ज़ा नहीं रख सके। जो बुर्जुआ पेरिस में रह गये थे, उन्होंने वर्साय तक यह सूचना पहुँचा दी कि शहर में किन जगहों पर प्रतिरक्षा कमज़ोर है, और 22 से 28 मई के बीच फ़ौजें उन दरवाज़ों से भीतर घुस आयीं जहाँ पहरे की व्यवस्था कमज़ोर थी।

5. यह एक रक्तरंजित सप्ताह था। कम्युनार्डों ने डटकर मुक़ाबला किया। लेकिन हमलावर फ़ौजों के सामने उन्हें पीछे हटना पड़ा और पेरिस के एक छोटे-से हिस्से में उन्होंने आख़िरी मोर्चा लिया। अब हर गली युद्ध का मैदान था और हर मक़ान एक क़िला। ऐसे भीषण हमले के आगे थके-माँदे कम्युनार्ड पीछे हटने को मजबूर थे जिसमें औरतों और बच्चों तक की जान नहीं बख़्शी गयी। नगर के जलते खण्डहरों के बीच लड़ते हुए हज़ारों कम्युनार्डों को क़ैद कर लिया गया। हज़ारों को तो वहीं मौत के घाट उतार दिया गया। कई हज़ार लोगों को जिनमें बच्चे, बीमार और बूढ़े थे, हाँककर खुली जगहों में लाया गया और गोली मार दी गयी। पागलपन से भरी वर्साय सेना की हर टुकड़ी जल्लादों का गिरोह थी, जो कम्यून से सहानुभूति रखने का सन्देह होते ही हर व्यक्ति को फ़ौरन मौत के घात उतार देती थी। कम्यून अपने ही ख़ून के दरिया में डुबो दिया गया। पेरिस के रईस, जिनमें से कई अब लौट आये थे, सड़क की पटरियों पर खड़े होकर इस घृणित तमाशे को देख रहे और इस जीत के लिए अपनी पीठ थपथपा रहे थे।

कम्यून में भाग लेने के लिए हज़ारों मज़दूरों पर मुकदमा चलाने का नाटक किया गया। लेकिन सारे जज पूँजीपतियों के आदमी थे और मुकदमे का फैसला पहले से तय था। हज़ारों मज़दूरों को मौत की सज़ा या देशनिकाला दिया गया।

6. श्वेत आतंक बेरोकटोक जारी था। हज़ारों की संख्या में कम्युनार्डों को घेरकर पेरे लाशेज़ क़ब्रगाह और दूसरी दर्जनभर जगहों पर ले जाकर गोलियों से भून दिया गया। दीवारों के साथ खड़ाकर निडर भीड़ पर जब सेना गोलियाँ बरसाती तो, पेरिस के मज़दूरों का हत्यारा, जनरल गैलीफ़ेट वहाँ खड़ा होकर तमाशा देखता था। लाशों के बड़े-बड़े टीले बन गये, जिनमें वे भी थे जिनकी अभी मौत नहीं हुई थी... "कम्युनार्डों की दीवार" का एक हिस्सा अभी भी मौजूद है, उस पर बनाये गये वीर कम्युनार्डों के चेहरे पूँजीवादी शासन को चुनौती भी है और कम्यून के शहीदों का स्मारक भी है। सिर्फ़ उस एक सप्ताह में 40,000 मज़दूरों का क़त्लेआम हुआ। फिर वे कम्युनार्ड, जो वहाँ से बचकर निकल गये थे, घेरकर लाये गये और उनके साथ मुक़दमे का नाटक किया गया। उन सभी को अपराधी घोषित किया गया और या तो गोली मार दी गयी या फ़्रांस के क़ब्ज़े वाले दूरदराज़ के टापुओं में बुखार, अतिशय काम के बोझ और लापरवाही से मरने के लिये भेज दिया।

7. कम्यून के जीवनकाल में ही **कार्ल मार्क्स** ने लिखा था : **"यदि कम्यून को नष्ट भी कर दिया गया, तब भी संघर्ष सिर्फ़ स्थगित होगा। कम्यून के सिद्धान्त शाश्वत और अनश्वर हैं, जब तक मज़दूर वर्ग मुक्त नहीं हो जाता, तब तक ये सिद्धान्त बार-बार प्रकट होते रहेंगे।"** मजदूरों की पहली हथियारबन्द बग़ावत और पहली सर्वहारा सत्ता की अहमियत बताते हुए मार्क्स ने कहा था, **"18 मार्च का गौरवमय आन्दोलन मानव जाति को वर्ग-शासन से सदा के लिए मुक्त कराने वाली महान सामाजिक क्रान्ति का प्रभात है।"**

कम्यून को ख़ून की नदियों में डुबोकर भी पूँजीपति कभी चैन से नहीं बैठ सके। मज़दूरों ने अपने साथियों के ख़ून से लाल झण्डे को उठाकर आज़ादी और इंसाफ़ की दुनिया के लिए अपनी लड़ाई फिर से शुरू कर दी।

पेरिस कम्यून : पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा (चौथी किश्त)

आज भारत ही नहीं, पूरी दुनिया के मज़दूर पूँजी की लुटेरी ताक़त के तेज़ होते हमलों का सामना कर रहे हैं, और मज़दूर आन्दोलन बिखराव, ठहराव और हताशा का शिकार है। ऐसे में इतिहास के पन्ने पलटकर मज़दूर वर्ग के गौरवशाली संघर्षों से सीखने और उनसे प्रेरणा लेने की अहमियत बहुत बढ़ जाती है। आज से 141 वर्ष पहले, 18 मार्च 1871 को फ्रांस की राजधानी पेरिस में पहली बार मज़दूरों ने अपनी हुकूमत क़ायम की। इसे पेरिस कम्यून कहा गया। उन्होंने शोषकों की फैलायी इस सोच को ध्वस्त कर दिया कि मज़दूर राज-काज नहीं चला सकते। पेरिस के जाँबाज़ मज़दूरों ने न सिर्फ़ पूँजीवादी हुकूमत की चलती चक्की को उलटकर तोड़ डाला, बल्कि 72 दिनों के शासन के दौरान आने वाले दिनों का एक छोटा-सा मॉडल भी दुनिया के सामने पेश कर दिया कि समाजवादी समाज में भेदभाव, ग़ैर-बराबरी और शोषण को किस तरह ख़त्म किया जायेगा। आगे चलकर 1917 की रूसी मज़दूर क्रान्ति ने इसी कड़ी को आगे बढ़ाया।

मज़दूर वर्ग के इस साहसिक कारनामे से फ्रांस ही नहीं, सारी दुनिया के पूँजीपतियों के कलेजे काँप उठे। उन्होंने मज़दूरों के इस पहले राज्य का गला घोंट देने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया और आख़िरकार मज़दूरों के कम्यून को उन्होंने ख़ून की नदियों में डुबो दिया। लेकिन कम्यून के सिद्धान्त अमर हो गये।

पेरिस कम्यून की हार से भी दुनिया के मज़दूर वर्ग ने बेशक़ीमती सबक़ सीखे। पेरिस के मज़दूरों की क़ुर्बानी मज़दूर वर्ग को याद दिलाती रहती है कि पूँजीवाद को मटियामेट किये बिना उसकी मुक्ति नहीं हो सकती।

'मज़दूर बिगुल' के मार्च 2012 अंक से हमने दुनिया के पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा की शुरुआत की है, जो अगले कई अंकों में जारी रहेगी। **– सम्पादक**

इस शृंखला की पहली दो किश्तों में हमने पेरिस कम्यून की पृष्ठभूमि के तौर पर यह जाना कि पूँजी की सत्ता के ख़िलाफ़ लड़ने की शुरुआत मज़दूरों ने कैसे की और किस तरह चार्टिस्ट आन्दोलन तथा 1848 की क्रान्तियों से होते हुए मज़दूर वर्ग की चेतना और उसकी संगठनबद्धता आगे बढ़ती गयी। हमने मज़दूर वर्ग की वैज्ञानिक विचारधारा के विकास और उसके पहले अन्तरराष्ट्रीय संगठन के गठन के बारे में जाना। पिछले अंक (तीसरी किश्त) में हमने पेरिस कम्यून की पूरी कहानी को थोड़े शब्दों में पाठकों के सामने रखा था। इस अंक से हम कम्यून की स्थापना और उसकी रक्षा करने में मेहनतकशों के वीरतापूर्ण संघर्ष तथा कम्यून के उन महान फ़ैसलों और कामों के बारे में विस्तृत चर्चा शुरू कर रहे हैं जो आज भी दुनिया भर के सर्वहारा वर्ग को राह दिखा रहे हैं। –सं.

ऐसे हुई पेरिस कम्यून की शुरुआत

पेरिस की मेहनतकश जनता इस बात से तटस्थ नहीं थी कि देश के शासक क्या कर रहे हैं। वे समझ रहे थे कि दुश्मन फ़ौज दरवाज़े पर खड़ी थी और शासक देश की रक्षा करने के बजाय समझौतों और साज़िशों में लगे थे। सड़कों पर, चायख़ानों में, हर जगह लोग इकट्ठा होकर इस स्थिति पर चर्चा किया करते थे।

1. पेरिस कम्यून की स्थापना की ओर ले जाने वाली घटनाओं की शुरुआत तब हुई जब प्रशिया के साथ लड़ाई में सितम्बर 1870 में फ्रांस की बुरी तरह हार हुई। साम्राज्य के ध्वस्त होने के साथ ही फ्रांस की राजधानी पेरिस के मेहनतकशों ने तीसरे गणराज्य की स्थापना की घोषणा कर दी। एक अस्थायी सरकार क़ायम हुई जिसे राष्ट्रीय प्रतिरक्षा की सरकार कहा गया। लेकिन मज़दूरों को हथियारबन्द किये बिना, और उन्हें एक प्रभावी लड़ाकू बल के रूप में संगठित किये बिना पेरिस की रक्षा नहीं की जा सकती थी। मगर पेरिस के मेहनतकशों को हथियारबन्द करने का मतलब था क्रान्ति को हथियारबन्द करना। प्रशिया की हमलावर सेना पर पेरिस की जीत फ्रांस के पूँजीपतियों और उनके चाकर सरकारी अधिकारियों पर फ्रांसीसी मज़दूरों की जीत होती। राष्ट्रीय कर्तव्य और वर्ग हितों के इस टकराव में, तथाकथित 'राष्ट्रीय प्रतिरक्षा की सरकार' ने विदेशी दुश्मन के आगे घुटने टेकने में ज़रा भी संकोच नहीं दिखाया ताकि मज़दूरों को कुचला जा सके। मगर पेरिस के मेहनतकश समर्पण करने को तैयार नहीं थे। ग़रीब और उत्पीड़ित जनता की मदद और भरपूर भागीदारी से पेरिस के नेशनल गार्ड (1789 की क्रान्ति के दौरान जनता के बीच से उठ खड़े हुए सैन्य दस्तों) ने शहर की रक्षा के लिए कमर कस ली। सितम्बर 1870 के अन्तिम दिनों में प्रशिया की सेना ने पेरिस की घेरेबन्दी कर दी जो पाँच महीने तक चली। इस दौरान पेरिस के आम लोगों को भयानक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा मगर वे डटे रहे। पूँजीपतियों की सरकार के प्रमुख एडोल्फ़ थियेर ने जनवरी 1871 में अपमानजनक शर्तों पर प्रशिया के साथ समझौता कर लिया, फिर भी पेरिस की जनता ने समर्पण करने से इंकार कर दिया और नेशनल गार्ड में भरती जारी रही।

2. थियेर अच्छी तरह समझ रहा था कि जब तक पेरिस के मज़दूरों के हाथों में हथियार हैं तब तक सम्पत्तिवान वर्गों – बड़े भूस्वामियों और पूँजीपतियों – के राज के लिए ख़तरा बना रहेगा। दूसरे, प्रशिया का शासक बिस्मार्क फ्रांस की धरती पर मौजूद अपने पाँच लाख सैनिकों का ख़र्च भी फ्रांस की सरकार से वसूलने की माँग कर रहा था। थियेर और सरकार में उसके भ्रष्ट सहयोगी गणराज्य का तख़्ता पलटने का षड्यन्त्र रच रहे थे ताकि प्रशिया की इस माँग को पूरा करने का बोझ देश की मेहनतकश जनता पर थोपा जा सके। इस षड्यन्त्र की राह में एक ही ज़बर्दस्त बाधा थी – मज़दूरों का पेरिस। पेरिस की घेरेबन्दी के दौरान नेशनल गार्ड के सैनिकों ने ख़ुद संसाधन जुटाकर 400 तोपों का तोपख़ाना खड़ा किया था। पेरिस को निहत्था करना थियेर की सफलता की पहली शर्त थी। 18 मार्च, 1871 को थियेर ने नेशनल गार्ड की तोपों सहित उसके हथियार छीनने के लिए अपनी सेना को भेजा। सुबह होने से पहले अचानक की गयी इस कार्रवाई में कई जगह सरकारी सैनिक तोपों पर कब्ज़ा करने में सफल रहे, लेकिन जब वे मोन्तमार्त्र नाम के इलाक़े में पहुँचे तो मेहनतकश औरतों की नाराज़ भीड़ ने उन्हें घेर लिया और अपने ही लोगों पर गोली चलाने के लिए उन्हें धिक्कारने लगीं। औरतों की टुकड़ियों ने तोपों की हिफ़ाज़त की और चारों ओर ख़बर फैला दी। थोड़ी ही देर में, नेशनल गार्ड के हज़ारों सैनिकों की टुकड़ियाँ सड़कों पर निकल आयीं और नगाड़े बजाते हुए जनता को गोलबन्द करना शुरू कर दिया। **दोपहर के तीन बजे तक दुनिया के सबसे बड़े शहरों में से एक, पेरिस पर हथियारबन्द मज़दूरों का कब्ज़ा हो चुका था।**

पेरिस के बाहरी घेरे पर मज़दूरों के रिहायशी इलाक़े थे। जैसे-जैसे इन उपनगरों में लोग जागते गये और उन्हें थियेर की इस कमीनी हरकत का पता चलता गया, वे अपने औज़ारों और हथियारों के साथ सड़कों पर उमड़ पड़े और तोपों की रक्षा में जुट गये। ऊपर के चित्र में औरतों और बच्चों का एक दल दो तोपों को धकेलकर मोन्तमार्त्र की पहाड़ी पर ले जा रहा है।

3. जल्दी ही सेना की अन्य टुकड़ियों ने भी बग़ावत कर दी और बग़ावत की आग इतनी तेज़ी से फैली कि घबराये हुए थियेर ने बची-खुची सेना सहित सरकार को तुरन्त पेरिस छोड़कर वर्साई चले जाने का आदेश दे दिया। उनके साथ ही पेरिस के तमाम अमीर और सरकारी अधिकारी भी भाग खड़े हुए। कम्यूनार्डों ने उन्हें जाने दिया, जबकि इन सैनिकों को वे अपने पक्ष में कर सकते थे। उन्हें पेरिस से भाग रहे अमीरों को बन्धक बना लेना चाहिए था। अपनी इस उदारता की बाद में उन्हें भारी क़ीमत चुकानी पड़ी क्योंकि पूँजीपतियों ने मज़दूरों का ख़ून बहाने में रत्तीभर भी उदारता नहीं दिखायी।

सरकारी फ़ौज के जनरल क्लोद मार्टिन लेकॉम्ते ने लोगों की भीड़ पर गोली चलाने का आदेश तीन बार दिया। इस भीड़ में औरतें और बच्चे भी थे। लेकिन थियेर के सैनिकों ने गोली चलाने से इंकार कर दिया और उल्टे अपने ही जनरलों को गोली से उड़ा दिया। ऊपर के चित्र में जनरल लेकॉम्ते और एक अन्य जनरल को गोली मारते हुए उन्हीं के सैनिक दिखाये गये हैं।

अपनी बग्घियों में पेरिस से भागते हुए अमीर लोग। आम लोग उन्हें भागते हुए देखने के लिए सड़कों के किनारे जुट जाते और उन्हें यह देखकर बड़ा मज़ा आता था कि जान बचाकर भाग रहे इन अमीरों को ऐसे वक़्त पर भी अपनी क़ीमती पोशाकों, हैटों और गहनों को सँभालने की चिन्ता लगी हुई थी।

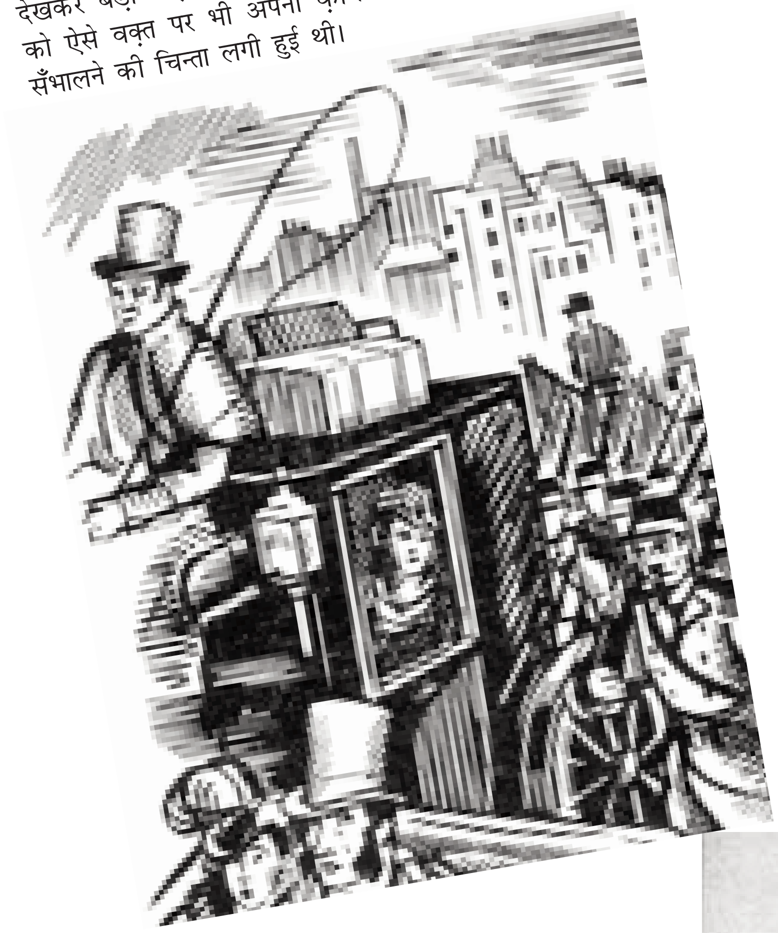

शुरू में सरकारी फ़ौजों की कुछ टुकड़ियों ने नेशनल गार्ड और लोगों पर हमले किये और उनसे तोपें छीनने की कोशिश की। लेकिन जनता का क्रान्तिकारी जोश जागृत हो चुका था और मज़दूर लड़ने के लिए पूरी तरह तैयार थे। उन्होंने ख़ास-ख़ास जगहों पर सड़कों पर बैरिकेड खड़े कर दिये और सैकड़ों की संख्या में उन पर मोर्चा सँभाल लिया। ऊपर और नीचे की तस्वीरों में मोन्तमार्त्र तथा एक अन्य इलाक़े में मोर्चे पर डटे हुए मज़दूर और नेशनल गार्ड के सदस्य दिख रहे हैं। सभी जगहों पर थियेर की वफ़ादार सैन्य टुकड़ियों को पीछे धकेल दिया गया।

कम्यून की ओर से जारी पोस्टर को पढ़ते हुए एक कम्युनार्ड

4. 18 मार्च को पेरिस में हर ओर यह गगनभेदी नारा गूँजता रहा – **'Vive La Commune!'** यानी **'कम्यून ज़िन्दाबाद!'** आख़िर यह कम्यून था क्या?

कम्यून की केन्द्रीय कमेटी ने 18 मार्च को जारी अपने घोषणापत्र में कहा था: **"शासक वर्गों की असफलताओं और ग़द्दारियों के बीच पेरिस के सर्वहाराओं ने यह समझ लिया है कि अब वक़्त आ गया है कि वे सार्वजनिक मामलों की दिशा अपने हाथों में लेकर स्थिति को सँभालें... उन्होंने समझ लिया है कि यह उनका अनिवार्य कर्त्तव्य और उनका परम अधिकार है कि वे सरकारी सत्ता पर कब्ज़ा करके अपने भाग्य का सूत्रधार स्वयं बनें!"** यह इतिहास में अभूतपूर्व घटना थी। उस समय तक सत्ता आम तौर पर ज़मींदारों तथा पूँजीपतियों के, यानी उनके विश्वसनीय लोगों के हाथों में होती थी, जिन्हें लेकर सरकार का गठन किया जाता था। लेकिन 18 मार्च की क्रान्ति के बाद, जब थियेर की सरकार अपने सैनिकों, पुलिस और अफ़सरों को लेकर पेरिस से भाग गयी थी, तब जनता स्थिति की स्वामी बन गयी और सत्ता सर्वहारा वर्ग के हाथों में पहुँच गयी। लेकिन आधुनिक समाज में सर्वहारा वर्ग राजनीतिक दृष्टि से तब तक अपना वर्चस्व क़ायम नहीं कर सकता, जब तक वह उन ज़ंजीरों को नहीं तोड़ देता, जो उसे पूँजी के साथ बाँधकर रखती हैं। इसीलिए यह ज़रूरी था कि कम्यून का आन्दोलन हर हाल में समाजवादी रंग लेता, यानी बुर्जुआ वर्ग के वर्चस्व को, पूँजी के वर्चस्व को उलट देने तथा मौजूदा सामाजिक व्यवस्था को जड़ से नष्ट कर देने के प्रयत्न शुरू करता।

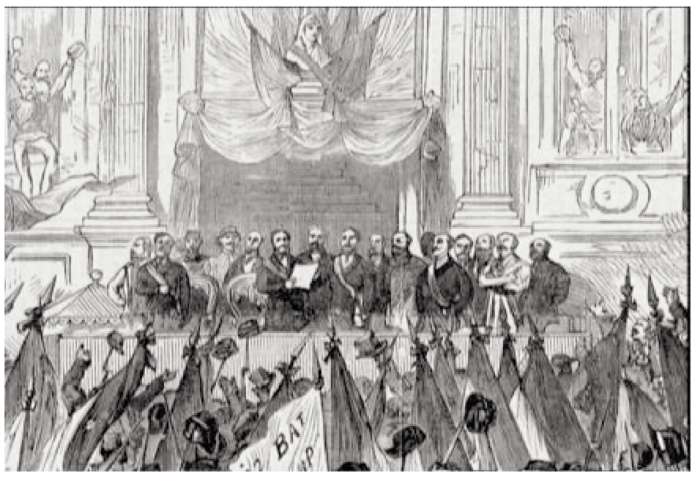

28 मार्च 1871 को टाउनहाल में पेरिस कम्यून की स्थापना की औपचारिक घोषणा कर दी गयी।

5. 18 मार्च 1871 को ही पेरिस कम्यून की स्थापना कर दी गयी। नेशनल गार्ड की केन्द्रीय कमेटी ने तुरन्त ही एक म्युनिस्पल सरकार का चुनाव कराने का आह्वान किया। मगर यह स्पष्ट था कि नयी सरकार चुने हुए प्रतिनिधियों की परम्परागत संसद जैसी नहीं होगी, बल्कि यह एक नये क़िस्म का शासन होगा, जो सचमुच में जनता के प्रति जवाबदेह होगा और जिसमें आम जनता की सीधी भागीदारी होगी। 26 मार्च को कम्यून का चुनाव हुआ। कम्यून परिषद के 92 सदस्यों में बड़ी संख्या में कुशल मज़दूर और कारीगर तथा अनेक डॉक्टर तथा पत्रकार जैसे पेशेवर लोग शामिल थे। उनमें से बहुत-से राजनीतिक कार्यकर्ता थे जिनमें सुधारवादी गणतंत्रवादी और विभिन्न प्रकार के समाजवादी शामिल थे। शुरू-शुरू में यह आन्दोलन घोर उलझनभरा और अनिश्चित था। उसमें वे देशभक्त भी शामिल हुए, जिन्हें आशा थी कि कम्यून जर्मनों के साथ युद्ध फिर से शुरू कर देगा और उसे सफल समापन तक पहुँचायेगा। छोटे दुकानदारों ने भी उसका समर्थन किया, जिनके तबाह हो जाने का ख़तरा था, अगर क़र्ज़ों तथा मकान-भाड़े का भुगतान मुल्तवी न किया जाता। शुरू-शुरू में कम्यून को एक हद तक बुर्जुआ जनतंत्रवादियों की सहानुभूति भी प्राप्त थी, जिन्हें भय था कि प्रतिक्रियावादी राष्ट्रीय सभा राजतंत्र की पुनःस्थापना कर देगी। लेकिन इस आन्दोलन में मुख्य भूमिका निस्सन्देह मज़दूरों (ख़ास तौर पर पेरिस के कारीगरों) ने अदा की, जिनके बीच द्वितीय साम्राज्य के अन्तिम सालों में सक्रिय समाजवादी प्रचार किया गया था और जिनमें से बहुत-से कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल में भी थे।

नीचे: कम्यून की स्थापना का जश्न मनाते हुए मेहनतकशों का हुजूम

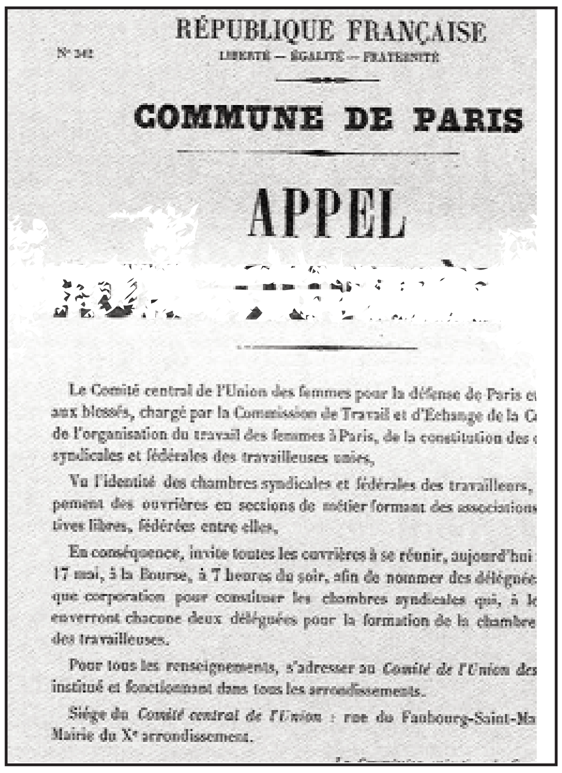

RÉPUBLIQUE FRANÇAISE

N° 342 LIBERTÉ — ÉGALITÉ — FRATERNITÉ

COMMUNE DE PARIS

APPEL

Le Comité central de l'Union des femmes pour la défense de Paris et
aux blessés, chargé par la Commission de Travail et d'Echange de la C
de l'organisation du travail des femmes à Paris, de la constitution des
syndicales et fédérales des travailleuses unies,

Vu l'identité des chambres syndicales et fédérales des travailleurs,
pement des ouvrières en sections de métier formant des associations
tives libres, fédérées entre elles,

En conséquence, invite toutes les ouvrières à se réunir, aujourd'hui
17 mai, à la Bourse, à 7 heures du soir, afin de nommer des déléguées
que corporation pour constituer les chambres syndicales qui, à le
enverront chacune deux déléguées pour la formation de la chambre
des travailleuses.

Pour tous les renseignements, s'adresser au *Comité de l'Union des*
institué et fonctionnant dans tous les arrondissements.

Siège du Comité central de l'Union : rue du Faubourg-Saint-Ma
Mairie du X^e arrondissement.

कम्यून की याद में सोवियत संघ में जारी डाक टिकट

6. कम्यून के चुनाव के लिए इण्टरनेशनल की पेरिस इकाई की ओर से जारी पर्चे **'मज़दूरों से अपील'** (दायीं ओर उस पर्चे का चित्र दिया गया है) से अनुमान लगाया जा सकता है कि उस वक़्त कम्यून के सामने क्या मुद्दे थे। नीचे उस पर्चे के कुछ हिस्से का अनुवाद दिया गया है:

मज़दूरो: हमने संघर्ष किया है और अपने समतावादी सिद्धान्तों के लिए तकलीफ़ उठाना सीखा है। जब तक हम नये सामाजिक ढाँचे की नींव तैयार करने में मदद कर सकते हैं, तब तक हम पीछे नहीं हट सकते।

हमने किस चीज़ की माँग की है? ऋण, विनिमय, और उत्पादन कोऑपरेटिवों के समूचे काम को इस तरह संगठित किया जाये जिससे कि मज़दूर को उसके श्रम का पूरा मूल्य मिलने की गारण्टी हो सके; मुफ़्त, सबके लिए एक जैसी और पूर्ण शिक्षा; सभा करने, संगठित होने और स्वतंत्र प्रेस के अधिकार तथा व्यक्ति के अधिकार; पुलिस, सेना, साफ़-सफ़ाई, आँकड़ों, आदि का प्रशासन नागरिकों के समुदाय द्वारा हो।

अब तक हम शासन करने वालों द्वारा ठगे जाते रहे हैं, वे हमें आपस में लड़ाकर अपना उल्लू सीधा करते रहे हैं।

आज पेरिस की जनता दूर तक देख रही है। वह किसी हुक्मरान द्वारा उँगली पकड़कर चलाये जाने वाले बच्चे की भूमिका को खारिज करती है और (26 मार्च, 1871 के) म्युनिस्पल चुनाव में, जोकि स्वयं जनता की कार्रवाई का परिणाम है, वह याद रखेगी कि समाज भी उसी सिद्धान्त से चलना चाहिए जिस सिद्धान्त से समूह और संघ चलते हैं। इसीलिए वे जिस तरह किसी बाहरी ताक़त द्वारा थोपे गये प्रशासन या अध्यक्ष को ख़ारिज करेंगे उसी तरह वे ऐसे किसी भी मेयर या प्रीफ़ेक्ट को भी ख़ारिज कर देंगे जो उनकी आकांक्षाओं पर खरी न उतरने वाली सरकार द्वारा थोपे जायेंगे। ...

हमें विश्वास है कि रविवार, 26 मार्च को पेरिस की जनता कम्यून के पक्ष में वोट डालने को सम्मान की बात समझेगी।

– इण्टरनेशनल की संघीय परिषद (पेरिस) और ट्रेड यूनियनों का महासंघ, 23 मार्च, 1871

7. बेहद मुश्किल हालात के बावजूद, अपने थोड़े-से समय में कम्यून कुछ बड़े कदम उठाने में कामयाब रहा। कम्यून ने स्थायी सेना, यानी सत्ताधारी वर्गों के हाथों के इस दानवी अस्त्र के स्थान पर पूरी जनता को हथियारबन्द किया। उसने धर्म को राज्य से पृथक करने की घोषणा की, धार्मिक पंथों को राज्य से दी जानेवाली धनराशियाँ (यानी पुरोहित-पादरियों को राजकीय वेतन) बन्द कर दीं, जनता की शिक्षा को सही अर्थों में सेक्युलर बना दिया और इस तरह चोग़ाधारी पुलिसवालों पर करारा प्रहार किया। विशुद्ध सामाजिक क्षेत्र में कम्यून बहुत कम हासिल कर पाया, लेकिन यह "बहुत कम" भी जनता की, मज़दूरों की सरकार के रूप में उसके स्वरूप को बहुत साफ़ तौर पर उजागर करता है। नानबाइयों की दुकानों में रात्रि-श्रम पर पाबन्दी लगा दी गयी। जुर्माने की प्रणाली का, जो मज़दूरों के साथ एक क़ानूनी डकैती थी, ख़ात्मा कर दिया गया। आखिरी चीज़, वह प्रसिद्ध आज्ञप्ति जारी की गयी, जिसके अनुसार मालिकों द्वारा छोड़ दिये गये या बन्द किये गये सारे मिल-कारख़ाने और वर्कशाप उत्पादन फिर से शुरू करने के लिए मज़दूरों के संघों को सौंप दिये गये। और सच्ची जनवादी, सर्वहारा सरकार के अपने स्वरूप पर ज़ोर देने के लिए कम्यून ने यह निर्देश दिया कि समस्त प्रशासनिक तथा सरकारी अधिकारियों के वेतन मज़दूर की सामान्य मज़दूरी से अधिक नहीं होंगे और किसी भी सूरत में 6000 फ्रांक सालाना से ज़्यादा नहीं होंगे। इन तमाम कदमों ने एकदम साफ़ तौर पर यह दिखा दिया कि कम्यून जनता की गुलामी और शोषण पर आधारित पुरानी दुनिया के लिए घातक ख़तरा था। इसी कारण बुर्जुआ समाज तब तक चैन महसूस नहीं कर सका, जब तक पेरिस की नगर संसद पर सर्वहारा वर्ग का लाल झण्डा फहराता रहा।

पेरिस कम्यून में शामिल कुछ अग्रणी मज़दूर

अगले अंक में: कम्यून ने पहली बार सच्चे जनवाद के उसूलों को व्यवहार में कैसे लागू किया।

पेरिस कम्यून : पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा (पाँचवी किश्त)

आज भारत ही नहीं, पूरी दुनिया के मज़दूर पूँजी की लुटेरी ताक़त के तेज़ होते हमलों का सामना कर रहे हैं, और मज़दूर आन्दोलन बिखराब, ठहराव और हताशा का शिकार है। ऐसे में इतिहास के पन्ने पलटकर मज़दूर वर्ग के गौरवशाली संघर्षों से सीखने और उनसे प्रेरणा लेने की अहमियत बहुत बढ़ जाती है। आज से 141 वर्ष पहले, 18 मार्च 1871 को फ्रांस की राजधानी पेरिस में पहली बार मज़दूरों ने अपनी हुकूमत क़ायम की। इसे पेरिस कम्यून कहा गया। उन्होंने शोषकों की फैलायी इस सोच को ध्वस्त कर दिया कि मज़दूर राज-काज नहीं चला सकते। पेरिस के जाँबाज़ मज़दूरों ने न सिर्फ़ पूँजीवादी हुकूमत की चलती चक्की को उलटकर तोड़ डाला, बल्कि 72 दिनों के शासन के दौरान आने वाले दिनों का एक छोटा-सा मॉडल भी दुनिया के सामने पेश कर दिया कि समाजवादी समाज में भेदभाव, ग़ैर-बराबरी और शोषण को किस तरह ख़त्म किया जायेगा। आगे चलकर 1917 की रूसी मज़दूर क्रान्ति ने इसी कड़ी को आगे बढ़ाया।

मज़दूर वर्ग के इस साहसिक कारनामे से फ्रांस ही नहीं, सारी दुनिया के पूँजीपतियों के कलेजे काँप उठे। उन्होंने मज़दूरों के इस पहले राज्य का गला घोंट देने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया और आख़िरकार मज़दूरों के कम्यून को उन्होंने ख़ून की नदियों में डुबो दिया। लेकिन कम्यून के सिद्धान्त अमर हो गये। पेरिस कम्यून की हार से भी दुनिया के मज़दूर वर्ग ने बेशक़ीमती सबक़ सीखे। पेरिस के मज़दूरों की क़ुर्बानी मज़दूर वर्ग को याद दिलाती रहती है कि पूँजीवाद को मटियामेट किये बिना उसकी मुक्ति नहीं हो सकती।

'मज़दूर बिगुल' के मार्च 2012 अंक से हमने दुनिया के पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा की शुरुआत की है, जो अगले कई अंकों में जारी रहेगी।

इस श्रृंखला की शुरुआती कुछ किश्तों में हमने पेरिस कम्यून की पृष्ठभूमि के तौर पर जाना कि पूँजी की सत्ता के ख़िलाफ़ लड़ने की शुरुआत मज़दूरों ने किस तरह की और किस तरह चार्टिस्ट आन्दोलन और 1848 की क्रान्तियों से गुज़रते हुए मज़दूर वर्ग की चेतना और संगठनबद्धता आगे बढ़ती गयी। हमने मज़दूरों की मुक्ति की वैज्ञानिक विचारधारा के विकास और पहले अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संगठन के बारे में जाना। पिछले अंक में हमने जाना कि कम्यून की स्थापना कैसे हुई और उसकी रक्षा के लिए मेहनतकश जनता किस प्रकार बहादुरी के साथ लड़ी। इस बार हम देखेंगे कि कम्यून ने सच्चे जनवाद के उसूलों को इतिहास में पहली बार व्यवहार में कैसे लागू किया और यह दिखाया कि "जनता की सत्ता" वास्तव में क्या होती है।

– सम्पादक

कम्यून ने दिखाया 'ऐसी होती है मेहनतकश जनता की सत्ता!'

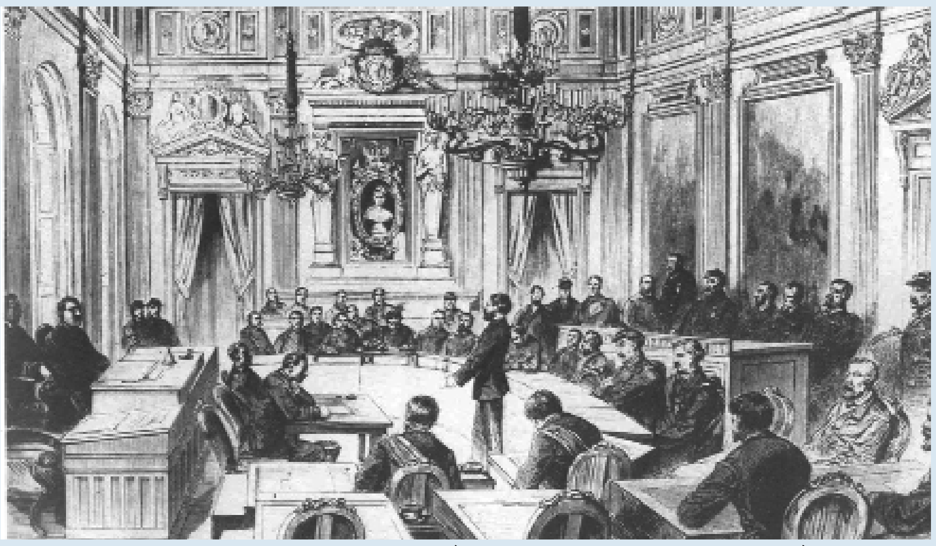

होटल द वील में जारी कम्यून के सदस्यों की बैठक का दृश्य। बुर्जुआ सरकार के दौरान यह एक आलीशान होटल था। इसी के हॉल में कम्यून की बैठकें होती थीं और यहीं से सभी महत्वपूर्ण आदेश जारी किये जाते थे।

1. **कम्यून के चुनाव** की पूर्वसंध्या पर, नेशनल गार्ड की केन्द्रीय कमेटी ने, जो उस समय तक शासन सँभाल रही थी, एक असाधारण घोषणा जारी की जो कम्यून के नेतृत्व की ईमानदारी और राजनीति के प्रति उसके स्वस्थ जनवादी तथा क्रान्तिकारी दृष्टिकोण को बताती है। इसमें कहा गया था:

"हमारा मिशन पूरा हो चुका है। होटल द वील (जहाँ से कम्यून का काम-काज चलाया जा रहा था) में, हम आपके चुने हुए प्रतिनिधियों के लिए जगह ख़ाली कर देंगे। ... इस सच्चाई को मत भूलियेगा कि आपकी सबसे अच्छी तरह सेवा वही लोग कर सकते हैं जिन्हें आप अपने बीच से चुनेंगे, जो आपकी तरह से जीते हैं, और उन्हीं तकलीफ़ों से गुज़रे हैं। महत्वाकांक्षी और पद-ओहदे के भूखे लोगों से सावधान रहिये... ऐसे बात-बहादुरों से सावधान रहिये जो काम नहीं कर सकते।"

2. **अब तक** की सभी शोषक राज्यसत्ताओं की यही विशेषता रही है कि राज्य चलाने वाले लोग समाज के सेवक के बजाय समाज के स्वामी बन जाते रहे हैं। इस स्थिति को रोकने के लिए कम्यून ने दो अचूक साधनों का इस्तेमाल किया। पहला यह कि इसने प्रशासकीय, न्यायिक और शैक्षिक – सभी पदों पर सभी सम्बन्धित लोगों की नियुक्तियाँ सार्विक मताधिकार के आधार पर चुनाव के द्वारा कीं और इस शर्त के साथ कि कभी भी उन्हीं निर्वाचकों द्वारा चुने गये व्यक्ति को वापस भी बुलाया जा सकता था। और दूसरा यह कि, ऊँचे और निचले दर्जे के सभी पदाधिकारियों को वही वेतन मिलता था जो अन्य मज़दूरों को। कम्यून द्वारा किसी को दी जाने वाली सबसे ऊँची तनख़्वाह 6,000 फ़्रैंक थी। इन दो अभूतपूर्व फ़ैसलों से कम्यून ने पदलोलुपता और कैरियरवाद पर असरदार चोट की।

पेरिस की घेरेबन्दी के कारण आर्थिक संकट झेल रहे बहुत से मज़दूरों को अपने औज़ार और घरेलू सामान तक गिरवी रखने पड़े थे। कम्यून ने इन सामानों की नीलामी पर तत्काल रोक लगा दी और उन्हें वापस करने का आदेश दिया। ऊपर के चित्र में एक दुकान में गिरवी रखे सामान मज़दूरों को लौटाये जा रहे हैं।

3. **दुश्मन सेना** से घिरे रहने और अनगिनत कठिनाइयों के बावजूद कम्यून की जनरल काउंसिल ने कुछ ही समय में बहुत बड़े-बड़े फ़ैसले किये। 16 अप्रैल का कम्यून ने उन सभी कारख़ानों को फिर से शुरू करने का आदेश दिया, जिन्हें उनके मालिक बन्द करके भाग गये थे। इन कारख़ानों के मजदूरों को कोआपरेटिव बनाने की सलाह दी गयी। ब्रेड बनाने वाले पेरिस के सैकड़ों कारख़ानों में रातभर काम करने का चलन रोक दिया गया। रोज़गार दफ़्तर को बन्द कर दिया गया क्योंकि ये दलालों के कब्ज़े में थे जो मज़दूरों का घिनौना शोषण करते थे। समय की कमी के कारण कम्यून के आदेशों में से कुछ ही लागू हो पाये। (कम्यून 72 दिनों तक रहा जिसमें से केवल 60 दिन उसकी बैठकें हो पायीं।) स्त्रियों को वोट देने का अधिकार दे दिया गया, अक्टूबर 1870 से अप्रैल 1871 तक, यानी पेरिस की घेरेबन्दी के दिनों का मकानों का सारा किराया रद्द कर दिया गया। सूदख़ोरी पर रोक लगा दी गयी और उधार दफ़्तरों में गिरवी रखी गये मज़दूरों के सभी औज़ार वापस लौटा दिये गये।

कम्यून ने पहली बार वास्तविक धर्मनिरपेक्ष जनवाद को साकार करते हुए यह घोषणा की कि धर्म हर आदमी का निजी मामला है और राज्य या सरकार को इससे एकदम अलग रखा जायेगा। नतीजतन, चर्च को सत्ता से अलग कर दिया गया। धार्मिक अनुष्ठानों पर पैसे की फ़िज़ूलख़र्ची पर रोक लग गयी। चर्च की सम्पत्ति को राष्ट्र की सम्पत्ति घोषित कर दिया गया। स्कूलों शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक चिह्नों, तस्वीरों और पूजा-प्रार्थना पर रोक लगा दी गयी।

4. कम्यून में महत्वपूर्ण से महत्वपूर्ण ओहदे और ज़िम्मेदारी वाले व्यक्ति को भी कोई विशेषाधिकार नहीं हासिल था। मज़दूर और अफ़सरों-मंत्रियों के तनख़्वाहों के भीतर पूँजीवादी हुकूमत के दौरान जो आकाश-पाताल का अन्तर था, उसे ख़तम कर दिया गया। राज्य के नेता जो वेतन लेते थे वह एक कुशल मज़दूर के वेतन के बराबर होता था। अधिक काम करना उनका अनिवार्य कर्तव्य था, पर उन्हें अधिक वेतन लेने का या किसी भी तरह की विशेष सुविधा का कोई अधिकार नहीं था। यह एक अभूतपूर्व चीज थी। इसने 'सस्ती सरकार' के नारे को सच्चे अर्थों में यथार्थ में बदल दिया। इसने शासकीय मामलों के संचालन के इर्दगिर्द निर्मित "रहस्य" और "विशिष्टता" के उस वातावरण को समाप्त कर दिया जो शोषक वर्ग द्वारा जनता को मूर्ख बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता था। इसने राजकीय मामलों के संचालन को सीधे-सीधे एक कामगार के कर्तव्यों में बदल दिया और राज्य के पदाधिकारियों को 'विशेष औज़ारों' से काम लेने वाले कामगारों में रूपान्तरित कर दिया। कम्यून के नेताओं पर काम का बहुत बोझ था। काउंसिल के सदस्यों को क़ानून बनाने के अलावा कई कार्यकारी और सैनिक ज़िम्मेदारियाँ भी उठानी पड़ती थीं।

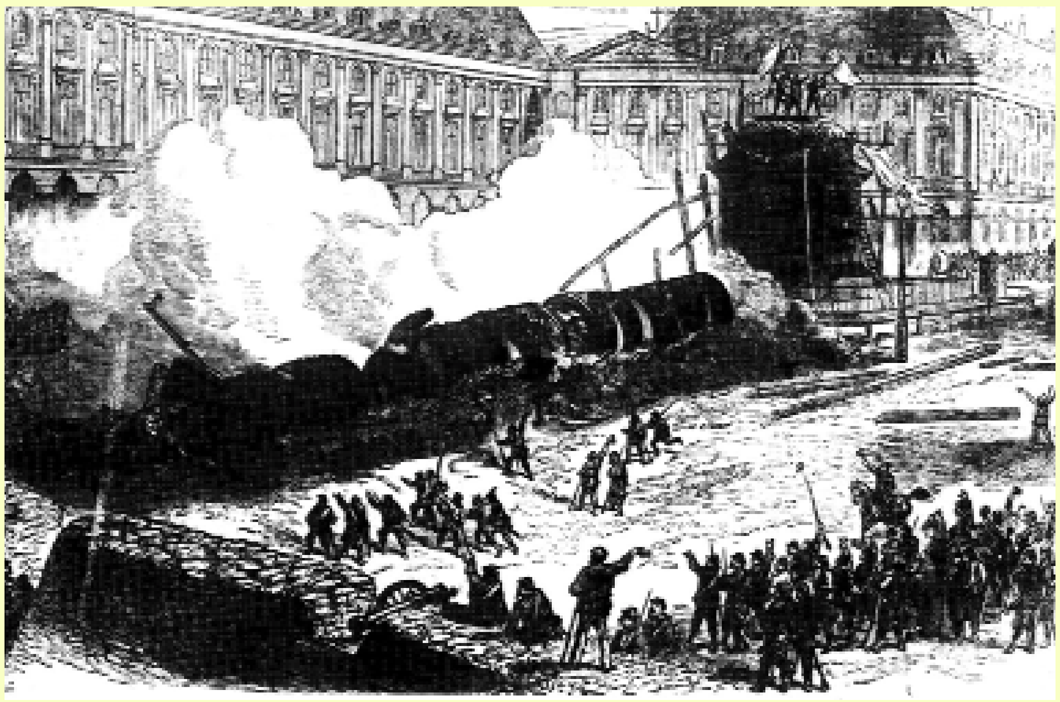

कम्यून अन्धराष्ट्रवाद, विस्तारवाद और राष्ट्रों के बीच युद्ध का विरोधी था। नेपोलियन द्वारा स्थापित विजय-स्तम्भ को इसीलिए ढहा दिया गया कि वह अन्धराष्ट्रवाद, विस्तारवाद और सैन्यवाद का प्रतीक था। जिस दिन उसे गिराया गया उस दिन गले में लाल स्काफ़ बाँधे और विशालकाय लाल बैनर लिये हुए हज़ारों लोग वेन्दोम स्तम्भ के इर्दगिर्द इकट्ठा हुए। यह एक विराटकाय मूर्ति थी जिसके ऊपर नेपोलियन बोनापार्त की काँसे की प्रतिमा लगी थी। जश्न का माहौल था। आसपास की इमारतें भी लाल रेशमी कपड़ों से सजी थीं। विजेता सम्राट के सिर में एक पुली जोड़ी गयी, चरखी घूमी और सिर धड़ाम से ज़मीन पर आ गिरा। लोग विजय-स्तम्भ के ध्वंसावशेषों पर चढ़ गये। उसके आधार पर अब एक लाल झण्डा लहरा रहा था। अब यह किसी एक देश की विजय का प्रतीक स्तम्भ नहीं था, बल्कि मानवजाति का विजय-स्तम्भ था। कम्यून के शब्दों में यह स्तम्भ "बर्बरता का समारक, पाशविक शक्ति का प्रतीक, सैन्यवाद का उद्घोष, अन्तरराष्ट्रीय क़ानून का नकार, विजेता के द्वारा पराजित का निरन्तर अपमान, और फ्रांसीसी गणराज्य के तीन महान सिद्धान्तों में एक से एक, भाईचारे का उल्लंघन" था।

JOURNAL OFFICIEL
DE LA RÉPUBLIQUE FRANCAISE

कम्यून के आधिकारिक अख़बार का पहला पन्ना। इसमें कम्यून के सभी दस्तावेज़, आज्ञप्तियाँ, बैठकों की रिपोर्टें, क्रान्तिकारी पेरिस की विभिन्न संस्थाओं के फ़ैसले, नोटिसें और सैन्य रिपोर्टें छापी जाती थीं। कम्यून जनता से छिपाकर कोई काम नहीं करता था। हर कार्रवाई और हर निर्णय की जानकारी आम लोगों को समय से दी जाती थी और उन्हें भागीदार बनाया जाता था।

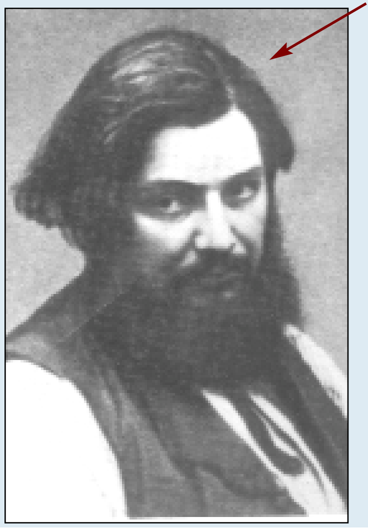

महान चित्रकार गुस्ताव कूर्बे, जिसकी पेंटिंग्स ने पूरे यूरोप को अचम्भित कर दिया था, कम्यून की परिषद का सक्रिय सदस्य था। वह कलाकारों के महासंघ का अध्यक्ष था और उसे कम्यून के शिक्षा आयोग का सदस्य बनाया गया था। उन्होंने स्कूलों में शिक्षा के सुधार की योजनाएँ बनायीं, युद्ध के कारण बन्द कर दिये गये संग्रहालयों को फिर से खोला और स्त्रियों की शिक्षा के लिए एक आयोग गठित किया। उस समय तक स्त्रियों की सार्वजनिक शिक्षा के बारे में सोचा भी नहीं जाता था।

6 अप्रैल को 'नेशनल गार्ड्स' की 137वीं बटालियन ने उस बदनाम गिलोतीन को बाहर निकालकर सार्वजनिक तौर पर जला दिया जिससे गत 75 वर्षों के भीतर सैकड़ों लोगों को मृत्युदण्ड दिया गया था। यह बुर्जुआ राज्यसत्ता के आतंक के नाश का प्रतीक था।

5. हम देखते आये हैं कि सामन्ती या पूँजीवादी व्यवस्था में राज्य अपने अधिकारियों को बहुत ऊँचे स्तर की जीवन-स्थितियाँ और बहुतेरे विशेषाधिकार देते हैं ताकि उन्हें जनता को कुचल डालने वाला तानाशाह बना दिया जाये। अपने ऊँचे ओहदों पर बैठे हुए, मोटी तनख़्वाहें उठाते हुए और लोगों पर धौंस जमाते हुए–यही है शोषक वर्गों के अधिकारियों की तस्वीर। पेरिस कम्यून के पहले के फ्रांस में अधिकारियों की सालाना तनख़्वाहें इस प्रकार थीं : नेशनल असेम्बली के प्रतिनिधि के लिए 30,000 फ्रैंक; मंत्री के लिए 50,000 फ्रैंक; प्रिवी कौंसिल के सदस्य के लिए एक लाख फ्रैंक; स्टेट कौंसिलर के लिए 1 लाख 30 हजार फ्रैंक। यदि कोई व्यक्ति कई आधिकारिक पदों पर एक साथ काम करता था तो वह इकट्ठे कई तनख़्वाहें उठाता था। जैसे, नेपोलियन तृतीय का प्रिय पात्र राउहेर एक ही साथ नेशनल असेम्बली का प्रतिनिधि, प्रिवी कौंसिल का सदस्य और स्टेट कौंसिलर–तीनों था। उसकी कुल सालाना तनख़्वाह 2 लाख 60 हजार फ्रैंक थी। पेरिस के एक कुशल मज़दूर को इतनी रकम कमाने के लिए 150 वर्षों तक काम करना पड़ता। खुद नेपोलियन तृतीय को सरकारी ख़ज़ाने से सालाना 2 करोड़ 50 लाख फ्रैंक दिये जाते थे। उसकी कुल सालाना सरकारी आमदनी तीन करोड़ फ्रैंक थी।

फ्रांसीसी सर्वहारा इस स्थिति से घृणा करता था। पेरिस कम्यून की स्थापना के पहले भी, उसने कई मौकों पर यह माँग की थी कि अधिकारियों की ऊँची तनख़्वाहों की व्यवस्था को समाप्त कर दिया जाये। कम्यून की स्थापना के साथ ही, मेहनतकश अवाम की यह चिरकालिक आकांक्षा पूरी हो गई। 1 अप्रैल को यह प्रसिद्ध आज्ञप्ति जारी हुई कि किसी भी पदाधिकारी को दी जाने वाली सबसे ऊँची सालाना तनख़्वाह 6,000 फ्रैंक से अधिक नहीं होनी चाहिए। यह उस समय एक कुशल फ्रांसीसी मज़दूर की सालाना मज़दूरी की कुल रकम के बराबर थी। पेरिस कम्यून ने अपने पदाधिकारियों द्वारा एक साथ कई तनख़्वाहें उठाने पर भी रोक लगा दी।

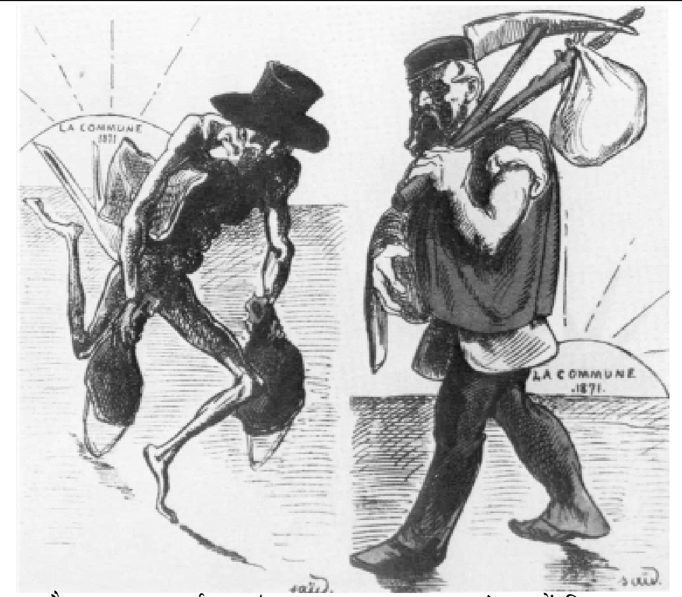

उस दौर का एक कार्टून – 'बुरा समय, अच्छा समय'। इसमें दिखाया गया है कि कम्यून के उदय के साथ ही दुष्ट पैसेवालों के लिए बुरा समय आ गया है जबकि मेहनतकशों का अच्छा समय अब आया है।

6. इसके साथ ही कम्यून ने कम तनख़्वाहों को बढ़ाने का भी काम किया ताकि वेतनमान में अन्तर को कम किया जा सके। उदाहरण के तौर पर डाकख़ाने में कम तनख़्वाह वाले कर्मचारियों की पगार 800 फ्रैंक सालाना से बढ़ाकर 1200 फ्रैंक कर दी गयी जबकि 12,000 फ्रैंक सालाना की ऊँची तनख़्वाहों को आधा घटाकर 6,000 फ्रैंक कर दिया गया। कम तनख़्वाह वाले कर्मचारियों की आसानी के लिए कम्यून ने तत्काल सख़्त फ़ैसले द्वारा तनख़्वाह से होने वाली सभी कटौतियों और जुर्मानों पर भी रोक लगा दी।

विशेषाधिकारों, ऊँची तनख़्वाहों और एक साथ कई पदों के लिए कई तनख़्वाहों की समाप्ति से सम्बन्धित नियमों को लागू करने में कम्यून के सदस्यों ने ख़ुद आदर्श प्रस्तुत किया। कम्यून के एक सदस्य थीज़ को, जो डाकख़ाने का प्रभारी था, नियमों के अनुसार 500 फ्रैंक मासिक तनख़्वाह मिल सकती थी, पर वह सिर्फ़ 450 फ्रैंक लेने पर ही राज़ी हुआ। कम्यून के जनरल व्रोब्लेवस्की ने स्वेच्छा से अधिकारी श्रेणी का अपना वेतन छोड़ दिया और एलिसे महल में दिये गये अपार्टमेण्ट में रहने से इंकार कर दिया। उसने घोषणा की : "एक जनरल की जगह उसके सैनिकों के बीच होती है।" कम्यून की कार्यकारिणी समिति ने जनरल की पदवी को समाप्त करने के लिए भी एक प्रस्ताव पारित किया। 6 अप्रैल के अपने प्रस्ताव में समिति ने कहा : "इस तथ्य के मद्देनज़र कि जनरल की पदवी नेशनल गार्ड के जनवादी संगठन के उसूलों से मेल नहीं खाती, ... जनरल की पदवी समाप्त करने का निर्णय लिया जाता है।" यह निर्णय व्यवहार में लागू करने के लिए कम्यून को समय नहीं मिल सका।

7. पेरिस कम्यून में जनसमुदाय वास्तविक स्वामी था। कम्यून जबतक अस्तित्व में था, जनसमुदाय व्यापक पैमाने पर संगठित था और सभी अहम राजकीय मामलों पर लोग अपने-अपने संगठनों में विचार-विमर्श करते थे। रोज़ाना क्लब-मीटिंगों में लगभग 20,000 ऐक्टिविस्ट हिस्सा लेते थे जहाँ वे विभिन्न छोटे-बड़े सामाजिक और राजनीतिक मसलों पर अपने प्रस्ताव या आलोचनात्मक विचार रखते थे। वे क्रान्तिकारी समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं में लेख और पत्र लिखकर भी अपनी आकांक्षाओं और माँगों को अभिव्यक्त करते थे। जनसमुदाय का यह क्रान्तिकारी उत्साह और यह पहलकदमी कम्यून की शक्ति का स्रोत थी।

कम्यून के सदस्य जनसमुदाय के विचारों पर विशेष ध्यान देते थे, इसके लिए लोगों की विभिन्न बैठकों में हिस्सा लेते थे और उनके पत्रों का अध्ययन करते थे। कम्यून की कार्यकारिणी समिति के महासचिव ने कम्यून के सेक्रेटरी को पत्र लिखते हुए कहा था: "हमें प्रतिदिन, ज़ुबानी और लिखित–दोनों ही रूपों में बहुत सारे प्रस्ताव प्राप्त होते हैं जिनमें से कुछ व्यक्तियों द्वारा और कुछ क्लबों और इण्टरनेशनल की शाखाओं द्वारा भेजे गये होते हैं। ये प्रस्ताव अक्सर उत्तम कोटि के होते हैं और कम्यून द्वारा इनपर विचार किया जाना चाहिए।" वास्तव में, कम्यून जनसमुदाय के प्रस्तावों का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करता था और उन्हें स्वीकार करता था। कम्यून की बहुत-सी महान आज्ञप्तियाँ जनसमुदाय के प्रस्तावों पर आधारित थीं, जैसे कि राज्य के पदाधिकारियों के लिए ऊँची तनख़्वाहों की व्यवस्था समाप्त करना, बकाया किराये को रद्द करना, धर्मनिरपेक्ष शिक्षा-व्यवस्था लागू करना, नानबाइयों के लिए रात की पाली में काम करने की व्यवस्था समाप्त करना, वगैरह-वगैरह।

एक और कार्टून - 'ल पेर दुशेन का गुस्सा'। 'ल पेर दुशेन' एक लोकप्रिय क्रान्तिकारी अख़बार था। कार्टून कम्यून के दुश्मनों थियेर सरकार के नेताओं और वर्साय के प्रतिक्रियावादियों का पर्दाफ़ाश करने में क्रान्तिकारी पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका को दर्शाता है।

19 अप्रैल को कम्यून ने पूरे पेरिस में चिपकाये गये बड़े-बड़े पोस्टरों के ज़रिये उन लक्ष्यों की घोषणा की जिनके लिए वह लड़ रहा था: 'गणराज्य को मज़बूत बनाना ...कम्यून की सम्पूर्ण स्वायत्तता का फ्रांस के सभी इलाक़ों में विस्तार... व्यक्तिगत स्वातंत्र्य, अन्तरात्मा की स्वतंत्रता और श्रम की स्वतंत्रता की सम्पूर्ण गारण्टी... ' इसका अन्त इन शब्दों के साथ हुआ: '18 मार्च की जन पहलकदमी द्वारा शुरू हुई कम्यून की क्रान्ति ने एक नये राजनीतिक युग का सूत्रपात किया है, जो प्रयोगात्मक, सकारात्मक और वैज्ञानिक है। इसके साथ ही, पुराने ढंग की शासकीय और धार्मिक दुनिया का, सैन्यवाद का, एकाधिकारवाद का, और उन सभी विशेषाधिकारों का अन्त हो जायेगा जो सर्वहारा की ग़ुलामी और राष्ट्र के दुर्भाग्य और कष्टों का कारण हैं।

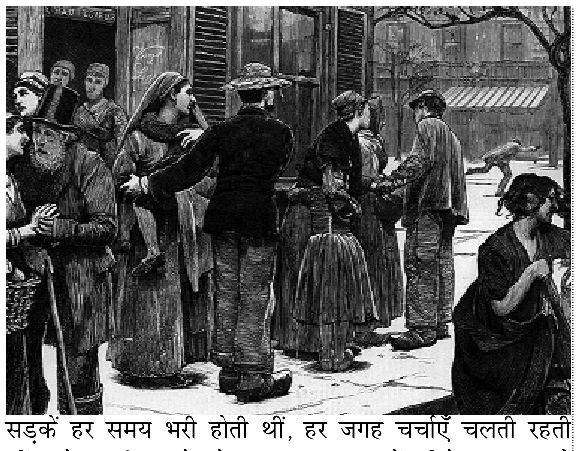

सड़कें हर समय भरी होती थीं, हर जगह चर्चाएँ चलती रहती थीं। लोग कठिनाइयों के बावजूद आपस में चीज़ें साझा करते थे। बिना किसी तरह की पुलिस के, सड़कें सुरक्षित थीं।

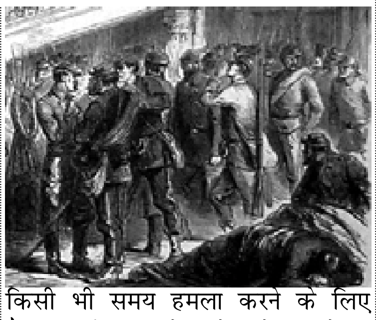

किसी भी समय हमला करने के लिए तैयार वर्साय की सेना से घिरे हुए पेरिस में चौबीसों घण्टे, पूरे शहर में, सड़कों, पर चायख़ानों में, चर्चों के अहातों में, लोगों की छोटी-छोटी सभाएँ और सलाह-मशविरे चलते रहते थे जिनमें लोग मिलकर फ़ैसले लेते थे।

एक क्रान्तिकारी पेरिस क्लब की बैठक का दृश्य। कम्यून के दौरान लोगों को एकजुट और सक्रिय करने में क्रान्तिकारी पेरिस क्लबों ने बड़ी भूमिका निभायी थी।

8. जनसमुदाय कम्यून और इसके सदस्यों के कार्यों की सावधानीपूर्वक जाँच-पड़ताल भी करता था। उस दौरान तृतीय प्रान्त के कम्युनल क्लब का एक प्रस्ताव कहता है : "जनता ही स्वामी है... जिन लोगों को तुमने चुना है अगर वे ढुलमुलपन का या बेकाबू होने का संकेत देते हैं, तो उन्हें आगे की ओर धक्के दो ताकि हमारा लक्ष्य पूरा हो सके – यानी हमारे अधिकारों के लिए जारी संघर्ष लक्ष्य तक पहुँच सके।" प्रतिक्रान्तिकारियों, भगोड़ों और ग़द्दारों के ख़िलाफ़ दृढ़ कदम न उठाने के लिए, स्वयं कम्यून द्वारा पारित आज्ञप्तियों को तत्काल लागू नहीं करने के लिए और कम्यून के सदस्यों के बीच एकता के अभाव के लिए जनसमुदाय ने कम्यून की आलोचना की। उदाहरण के तौर पर, 'ल पेर दुशेन' अख़बार के 27 अप्रैल के अंक में छपा एक पाठक का पत्र कहता है : "कृपया समय-समय पर कम्यून के सदस्यों को धक्के लगाते रहें, उनसे कहें कि वे सो न जाया करें, और ख़ुद अपनी आज्ञप्तियों को लागू करने में टालमटोल न करें। उन्हें अपने आपसी झगड़ों को समाप्त कर लेना चाहिये क्योंकि सिर्फ़ विचारों की एकता के ज़रिए ही वे अधिक शक्ति के साथ कम्यून की हिफ़ाज़त कर सकते हैं।"

पेरिस की घेरेबन्दी के दौरान सामाजिक ज़रूरतों को पूरा करने के लिए स्थानीय रिहायशी इलाक़ों (मुहल्लों) में उठ खड़े हुए अनगिनत तदर्थ संगठन आगे भी बने रहे और कम्यून के सहयोगी बन गये। ये स्थानीय सभाएँ, जिनमें आम तौर स्थानीय मज़दूर शामिल होते थे, कम्यून के कामों पर निगरानी भी रखती थीं और ख़ुद अपनी ओर से भी कई उपयोगी कामों को अंजाम देती थीं। कहीं वे स्कूलों के लिए पढ़ाई की सामग्री जुटाती थीं, तो कहीं स्कूल या अनाथ बच्चों के लिए घर स्थापित करती थीं। ऐसे अनेक उदाहरण थे। लेकिन एक बात हर जगह साफ़ थी – कम्यून ने साधारण मज़दूरों की पहलकदमी को जगा दिया था और वे आगे बढ़कर उन कामों को सँभाल रहे थे जिन्हें पहली मोटी तनख़्वाह पाने वाले प्रशासनिक अफ़सर तथा विशेषज्ञ किया करते थे।

...अगले अंक में जारी

पेरिस कम्यून : पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा (छठी किश्त)

आज भारत ही नहीं, पूरी दुनिया के मज़दूर पूँजी की लुटेरी ताक़त के तेज़ होते हमलों का सामना कर रहे हैं, और मज़दूर आन्दोलन बिखराव, ठहराव और हताशा का शिकार है। ऐसे में इतिहास के पन्ने पलटकर मज़दूर वर्ग के गौरवशाली संघर्षों से सीखने और उनसे प्रेरणा लेने की अहमियत बहुत बढ़ जाती है। आज से 141 वर्ष पहले, 18 मार्च 1871 को फ्रांस की राजधानी पेरिस में पहली बार मज़दूरों ने अपनी हुकूमत क़ायम की। इसे पेरिस कम्यून कहा गया। उन्होंने शोषकों की फैलायी इस सोच को ध्वस्त कर दिया कि मज़दूर राज-काज नहीं चला सकते। पेरिस के जाँबाज़ मज़दूरों ने न सिर्फ़ पूँजीवादी हुकूमत की चलती चक्की को उलटकर तोड़ डाला, बल्कि 72 दिनों के शासन के दौरान आने वाले दिनों का एक छोटा-सा मॉडल भी दुनिया के सामने पेश कर दिया कि समाजवादी समाज में भेदभाव, ग़ैर-बराबरी और शोषण को किस तरह ख़त्म किया जायेगा। आगे चलकर 1917 की रूसी मज़दूर क्रान्ति ने इसी कड़ी को आगे बढ़ाया।

मज़दूर वर्ग के इस साहसिक कारनामे से फ्रांस ही नहीं, सारी दुनिया के पूँजीपतियों के कलेजे काँप उठे। उन्होंने मज़दूरों के इस पहले राज्य का गला घोंट देने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया और आख़िरकार मज़दूरों के कम्यून को उन्होंने ख़ून की नदियों में डुबो दिया। लेकिन कम्यून के सिद्धान्त अमर हो गये। पेरिस कम्यून की हार से भी दुनिया के मज़दूर वर्ग ने बेशक़ीमती सबक़ सीखे। पेरिस के मज़दूरों की कुर्बानी मज़दूर वर्ग को याद दिलाती रहती है कि पूँजीवाद को मटियामेट किये बिना उसकी मुक्ति नहीं हो सकती।

'मज़दूर बिगुल' के मार्च 2012 अंक से हम दुनिया के पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा की शुरुआत की है, जो अगले कई अंकों में जारी रहेगी।

इस शृंखला की शुरुआती कुछ किश्तों में हमने पेरिस कम्यून की पृष्ठभूमि के तौर पर जाना कि पूँजी की सत्ता के ख़िलाफ़ मज़दूरों ने किस तरह लड़ना शुरू किया और किस तरह चार्टिस्ट आन्दोलन और 1848 की क्रान्तियों से गुज़रते हुए मज़दूर वर्ग की चेतना और संगठनबद्धता आगे बढ़ती गयी। हमने मज़दूरों की मुक्ति की वैज्ञानिक विचारधारा के विकास और पहले अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संगठन के बारे में जाना। पिछले अंकों में हमने जाना कि कम्यून की स्थापना कैसे हुई और उसकी रक्षा के लिए मेहनतकश जनता किस प्रकार बहादुरी के साथ लड़ी। हमने यह भी देखा कि कम्यून ने सच्चे जनवाद के उसूलों को इतिहास में पहली बार अमल में कैसे लागू किया और यह दिखाया कि "जनता की सत्ता" वास्तव में क्या होती है। – सम्पादक

पेरिस कम्यून – सर्वहारा अधिनायकत्व का पहला प्रयोग

कम्यून के पास वक़्त की कमी थी। उसे आगे-पीछे नज़र दौड़ाने, अपने कार्यक्रम को पूरा करने की तैयारी की मोहलत नहीं मिली। वह काम में जुट भी नहीं पाया था कि वर्साई में जमी और पूरे बुर्जुआ वर्ग द्वारा समर्थित सरकार ने पेरिस के विरुद्ध युद्ध की कार्रवाइयाँ शुरू कर दीं। कम्यून को सबसे पहले आत्मरक्षा के बारे में सोचना पड़ा। अपने अन्तिम दिनों तक, 21-28 मई तक उसे और किसी चीज़ के बारे में संजीदगी से सोचने का मौक़ा ही नहीं मिला। मगर कम्यून के सदस्य मिले हुए समय का पूरा लाभ उठाने के लिए दिनों रात काम में जुटे रहे। नेशनल गार्ड के रक्षकों के पहरे में कम्यून की बैठकें लगातार जारी रहती थीं।

1. कम्यून मज़दूर वर्ग के इतिहास की महानतम और सर्वाधिक प्रेरक घटनाओं में से एक है। एक ज़बर्दस्त क्रान्तिकारी उभार में पेरिस की मेहनतकश जनता ने पूँजीवादी राज्य को हटाकर उसके स्थान पर जनता की सरकार की अपनी संस्थाएँ क़ायम कीं और 72 दिनों तक राजनीतिक सत्ता अपने हाथों में रखी। पेरिस के मज़दूरों ने बेहद कठिन हालात में, शोषण और उत्पीड़न का ख़ात्मा करने और बिल्कुल नयी बुनियाद पर समाज का नवनिर्माण करने के लिए जी-जान से कोशिश की। उन 72 दिनों की घटनाओं के सबक़ आज भी मज़दूर वर्ग के लिए बहुत अधिक महत्वपूर्ण हैं।

कम्यून का चुनाव सार्विक पुरुष मताधिकार के सिद्धान्तों के अनुसार हुआ था। वर्साय स्थित प्रतिक्रान्तिकारी सरकार ने जनता से चुनाव का बहिष्कार करने की अपील की थी और बुर्जुआ तथा अभिजात मुहल्लों में डाले मतों की संख्या बहुत कम थी। यह अच्छा ही था, क्योंकि इसका मतलब यह था कि कम्यून मुख्यतः मेहनतकशों द्वारा ही चुना गया था। कम्यून के सदस्यों में राष्ट्रीय गार्ड की केन्द्रीय समिति के वार्ले, दूवाल, जूर्द, एद और वाइयां जैसे सबसे प्रमुख लोग भी थे। राष्ट्रीय गार्ड की केन्द्रीय समिति की ही भाँति कम्यून भी अपने को पेरिस नगर का नगरपालिका निकाय नहीं वरन जनतंत्र की केन्द्रीय क्रान्तिकारी सरकार मानता था।

2. कम्यून ने सर्वोच्च विधायिका के तौर पर काम करते हुए क़ानून बनाना शुरू कर दिया। साथ ही कम्यून क़ानूनों के लागू होने की निगरानी भी करता था, यानी वह सर्वोच्च कार्यपालिका भी था। विधायिका तथा कार्यपालिका की शक्तियों का एक ही निकाय में यह संयोजन कम्यून के सबसे महत्वपूर्ण लक्षणों में एक था।

कम्यून ने केन्द्रीय समिति द्वारा शुरू किये गये पुराने बुर्जुआ राज्यतंत्र का ख़ात्मा करने के काम को पूरा किया। नियमित सेना तथा पुलिस को इस समय तक आधिकारिक रूप से भंग किया जा चुका था। तोड़फोड़ के कार्यों में संलग्न पुराने नौकरशाही तंत्र के स्थान पर जनता की कतारों से आये नये कर्मचारियों को नियुक्त कर दिया गया। कम्यून ने आज्ञप्तियाँ जारी करके अफ़सरशाही के बेहद ऊँचे वेतन पाने वाले सदस्यों को बर्ख़ास्त कर दिया और राज्य कर्मचारियों के लिए वेतन की नयी अधिकतम सीमाएँ निर्धारित कर दीं, जिनका लक्ष्य औसत सरकारी कर्मचारी के वेतन को कुशल मज़दूर के वेतन के स्तर पर ले आना था। कम्यून ने यह भी आदेश दिया कि सरकारी कर्मचारी जनता द्वारा चुने जाने चाहिए, उन्हें जनता के आगे उत्तरदायी होना चाहिए और किसी भी समय जनता की माँग पर वापस बुलाया जा सकना चाहिए।

कम्यून की एक बैठक का दृश्य

"चूँकि कम्यून में सिर्फ़ मज़दूर या मज़दूरों के चुने हुए प्रतिनिधि बैठते थे, इसलिए उसके फ़ैसले निश्चित तौर पर सर्वहारा चरित्र के होते थे।"

– मज़दूरों के महान नेता और शिक्षक फ़्रेडरिक एंगेल्स के शब्द

3. राष्ट्रीय गार्ड की केन्द्रीय समिति तथा कम्यून द्वारा उठाये गये इन सभी कदमों ने एक नये ही प्रकार के राज्य की नींव डाली, जिसकी इतिहास में पहले कोई मिसाल नहीं थी।

लेकिन स्वयं पेरिस के मज़दूरों और उनके नेताओं – कम्यून के सदस्यों – तक को इसका अहसास नहीं था कि वे किस चीज़ का निर्माण कर रहे हैं। लोग और कम्यून में उनके प्रतिनिधि ज़िन्दगी के तकाज़ों के मुताबिक काम करते हुए जनसाधारण की सृजनात्मक शक्ति को ही साकार कर रहे थे। जनता की इस रचनात्मक शक्ति की दिशा और उसके वास्तविक महत्व का पहले-पहल कार्ल मार्क्स ने वर्णन किया था, जिन्होंने यह बताया कि 1871 का पेरिस कम्यून वस्तुतः उस सर्वहारा अधिनायकत्व का एक उदाहरण था, जिसके आगमन की उन्होंने अपनी 1848-1850 की कृतियों में घोषणा की थी।

पहले इण्टरनेशनल के अध्यक्ष, **कार्ल मार्क्स**

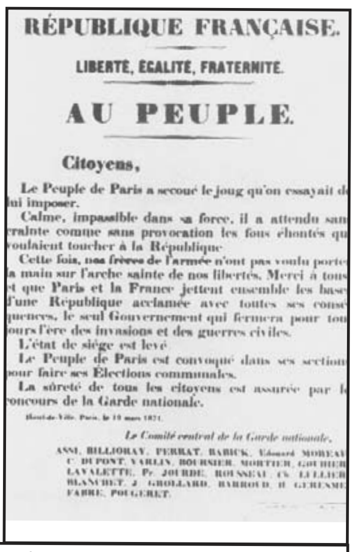

RÉPUBLIQUE FRANÇAISE.

LIBERTÉ, ÉGALITÉ, FRATERNITÉ.

AU PEUPLE.

Citoyens,

Le Peuple de Paris a secoué le joug qu'on essayait de lui imposer.

Calme, impassible dans sa force, il a attendu sans crainte comme sans provocation les fous éhontés qui voulaient toucher à la République.

Cette fois, nos frères de l'armée n'ont pas voulu porter la main sur l'arche sainte de nos libertés. Merci à tous et que Paris et la France jettent ensemble les bases d'une République acclamée avec toutes ses conséquences, le seul Gouvernement qui fermera pour toujours l'ère des invasions et des guerres civiles.

L'état de siége est levé.

Le Peuple de Paris est convoqué dans ses sections pour faire ses Élections communales.

La sûreté de tous les citoyens est assurée par le concours de la Garde nationale.

Hôtel-de-Ville, Paris, le 19 mars 1871.

Le Comité central de la Garde nationale,

ASSI, BILLIORAY, FERRAT, BABICK, Édouard MOREAU, C. DUPONT, VARLIN, BOURSIER, MORTIER, GOUHIER, LAVALETTE, Fr. JOURDE, ROUSSEAU, Ch. LULLIER, BLANCHET, J. GROLLARD, BARROUD, H. GERESME, FABRE, POUGERET.

पेरिस कम्यून की स्थापना के अगले दिन नेशनल गार्ड की केन्द्रीय कमेटी की ओर से जारी पोस्टर। इसमें कहा गया है – "नागरिको, पेरिस की जनता ने अपने ऊपर लदे हुए ग़ुलामी के बोझ को उतार फेंका है।... पेरिस और फ़्रांस मिलकर एक गणराज्य की बुनियाद रखेंगे, और इससे होने वाले सारे परिणामों सहित इसकी घोषणा की जायेगी, यही एकमात्र ऐसी सरकार होगी जो हमेशा के लिए हमलों और गृहयुद्धों के युग का अन्त कर देगी।"

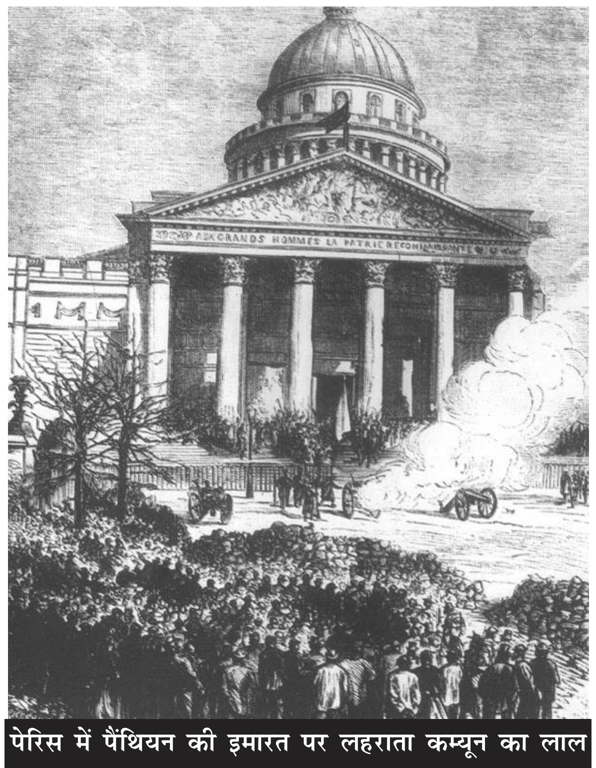

पेरिस में पैंथियन की इमारत पर लहराता कम्यून का लाल झण्डा।

RÉPUBLIQUE FRANÇAISE

N° 44 LIBERTÉ — ÉGALITÉ — FRATERNITÉ N° 44

COMMUNE DE PARIS

Citoyens,

Votre Commune est constituée.

Le vote du 26 mars a sanctionné la Révolution victorieuse.

Un pouvoir lâchement agresseur vous avait pris à la gorge : vous avez, dans votre légitime défense, repoussé de vos murs ce gouvernement qui voulait vous déshonorer en vous imposant un roi.

Aujourd'hui, les criminels que vous n'avez même pas voulu poursuivre abusent de votre magnanimité pour organiser aux portes même de la cité un foyer de conspiration monarchique. Ils invoquent la guerre civile; ils mettent en œuvre toutes les corruptions; ils acceptent toutes les complicités; ils ont osé mendier jusqu'à l'appui de l'étranger.

Nous en appelons de ces menées exécrables au jugement de la France et du monde.

Citoyens,

Vous venez de vous donner des institutions qui défient toutes les tentatives.

Vous êtes maîtres de vos destinées. Forte de votre appui, la représentation que vous venez d'établir va réparer les désastres causés par le pouvoir déchu : l'industrie compromise, le travail suspendu,

29 मार्च को कम्यून ने यह घोषणा जारी की: "अब आप ख़ुद अपनी तक़दीर के मालिक हैं। आपने अभी-अभी जिन प्रतिनिधियों को चुना है, वे आपके समर्थन के बलबूते पर, सत्ता से बेदखल किये गये शासकों द्वारा की गयी तमाम बर्बादियों की भरपायी करेंगे: अस्त-व्यस्त हो गये उद्योग, ठप्प हुए काम, बन्द पड़ी कारोबारी गतिविधियों को तेज़ी से शुरू किया जायेगा।"

फ़्रांस में 1830 की क्रान्ति के प्रतीक जुलाई स्तम्भ पर भी कम्युनार्डों ने लाल झण्डा फहरा दिया।

"अभूतपूर्व कठिनाइयों से भरी स्थितियों में काम करते हुए कम्यून का टिका रहना ही उसकी सफलता का सबसे बड़ा पैमाना है! पेरिस कम्यून द्वारा फहराया गया लाल झण्डा पेरिस के लिए मज़दूरों की सरकार का निशान है! उन्होंने साफ़ तौर पर, सोच-समझकर ऐलान किया है कि श्रम की मुक्ति और समाज को बदल डालना उनका लक्ष्य है।" – मज़दूर वर्ग के महान नेता और शिक्षक कार्ल मार्क्स के शब्द

4. निस्सन्देह, पेरिस कम्यून में सर्वहारा अधिनायकत्व का अपने पूर्ण रूप में विकसित हो पाना सम्भव नहीं था। कम्यून इस प्रकार के अधिनायकत्व की स्थापना का पहला ही प्रयास था। उसके नेता प्रयोग कर रहे थे और उन्होंने कई गम्भीर गलतियाँ भी कीं। फिर भी कम्यून ने यह दिखाया कि सर्वहारा वर्ग पूँजीवादी राज्यतंत्र को नष्ट करने और उसके स्थान पर राज्यतंत्र के उच्चतर स्वरूप की स्थापना करने में, और इस प्रकार लोकतंत्र के उच्चतर स्वरूप – बहुलांश के हितों में, जनता के हितों में – सर्वहारा लोकतंत्र का पथ प्रशस्त करने में समर्थ है और उसे ऐसा करना भी चाहिए।

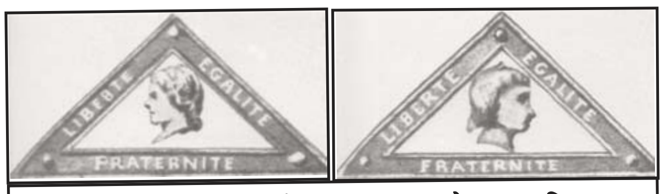

कम्युनार्डों द्वारा अपनी वर्दी पर लगाया जाने वाला बिल्ला। इस पर ये शब्द लिखे हैं – स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा।

कम्यून की ओर से निकलने वाले एक अख़बार का मुखपृष्ठ

5. मात्र 72 दिन की अपनी छोटी-सी ज़िन्दगी के बावजूद कम्यून ने दिखा दिया कि वह वास्तव में एक लोकतांत्रिक शासन था, जिसके लिए पहला और सबसे बड़ा सवाल मेहनतकश जनसाधारण का कल्याण था। राष्ट्रीय गार्ड की केन्द्रीय समिति ने सत्ता में आने के साथ कई नये महत्वपूर्ण क़ानून बनाये थे। क्रान्ति की सफलता के अगले ही दिन, 19 मार्च को उन सभी राजनीतिक बन्दियों की सज़ा माफ़ी की घोषणा कर दी गयी, जिन्हें शोषक वर्गों की सरकार ने गिरफ़्तार किया या सज़ा दी थी। गिरवी चीज़ों की बिक्री पर पाबन्दी लगाने और 15 फ़्रांक से कम मूल्य की गिरवी रखी वस्तुएँ उनके स्वामियों को लौटाने का आदेश तुरन्त जारी कर दिया गया। इसी प्रकार किराया न दे सकने पर किरायेदारों का मकानों से निकाला जाने पर भी रोक लगा दी गयी। इन सभी क़ानूनों का मकसद ग़रीबों और मेहनतकशों के हितों की रक्षा करना था। राष्ट्रीय गार्ड के सैनिकों को नियमित वेतन दिये जाने और ग़रीबों के लिए अनुदानस्वरूप बाँटे जाने के लिए दस लाख फ़्रांक जारी करने की आज्ञप्तियों का भी यही उद्देश्य था। कम्यून ने 16 अप्रैल को एक आज्ञप्ति जारी करके उन सभी उद्यमों को मज़दूरों और उत्पादकों के संघों को हस्तान्तरित कर दिया जिनके मालिक उन्हें छोड़कर भाग गये थे। यह आज्ञप्ति वास्तविक समाजवादी स्वरूप की थी और अगर कम्यून कुछ ज़्यादा चला होता, तो निस्सन्देह उसका समाजवादी चरित्र और भी अधिक स्पष्टता के साथ सामने आया होता।

इसी प्रकार कम्यून ने पेरिस से भागे हुए बुर्जुआ मालिकों के सभी फ़्लैटों को ज़ब्त करने और उन्हें नगर के रक्षकों को और सबसे पहले उन लोगों को, जिनके आवास लड़ाई के दौरान क्षतिग्रस्त हो गये थे, बाँटने की व्यवस्था की। चर्च को राजकाज से अलग कर दिया गया। जनसाधारण के बीच शिक्षा के प्रसार के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाये गये – लूव्र, त्युइल्येरी तथा अमूल्य कला निधियों से युक्त अन्य संग्रहालयों और महलों को सर्वसाधारण के लिए खोल दिया गया और कला की सभी विधाओं तथा सभी के लिए स्कूली शिक्षा को हर तरह से बढ़ावा दिया गया।

कम्यून की ओर से चलाये जाने वाले एक सामूहिक भोजनालय के बाहर लोगों का समूह। कम्यून के लिए दिनों-रात काम करने वाले लोगों और ग़रीब मेहनतकशों की मदद के लिए ऐसे अनगिनत भोजनालय, चिकित्सालय और बच्चों की देखभाल के केन्द्र चलाये जा रहे थे। इनकी ज़िम्मेदारी उठाने में सबसे बड़ी भूमिका औरतों की थी।

6. इन सभी उपायों से कम्यून ने अच्छी तरह से साबित कर दिया कि मेहनतकश वर्ग की सरकार जनता के कल्याण के लिए कितना ज़बर्दस्त काम कर सकती है। लेकिन कम्यून की उपलब्धियों को अमर बना देने वाले इन क़दमों के साथ-साथ कई ग़लतियाँ भी की गयीं, जो प्रतिक्रान्तिकारी पूँजीपति के विरुद्ध संघर्ष के लिए घातक सिद्ध हुईं।

इनमें से सबसे बड़ी ग़लतियाँ वही थीं, जो 18 मार्च की शानदार विजय के लगभग तुरन्त बाद की गयी थीं। पहली बात तो यही थी कि कम्यूनार्डों ने उन सैन्य दलों को नगर से बेरोकटोक चले जाने दिया, जो थियेर के प्रति वफ़ादार थे। इससे भी बड़ी ग़लती यह थी कि पेरिस के लोग अपनी विजय को उसकी तर्कसंगत परिणति पर नहीं ले गये, यानी तुरन्त बढ़कर वर्साई जाने, थियेर की हतोत्साह सेना पर संहारक प्रहार करने और देशभर में क्रान्ति की विजय सुनिश्चित करने के लिए लड़ते रहने के बजाय राष्ट्रीय गार्ड की केन्द्रीय समिति निष्क्रिय बैठकर यह देखने लगी कि पाँसा किस तरफ पलटेगा। इस घातक विलम्ब ने वर्साई स्थित सरकार के लिए अपनी आरम्भिक पराजय से सँभलना, क्रान्ति को पेरिस तक ही सीमित कर देना और शहर पर जवाबी हमले की तैयारी करना सम्भव बना दिया।

7. 18 मार्च के फौरन बाद कई और नगरों, – लियों, मार्सेई, साँ-एत्येन, तुलूज़, पपीन्याँ, क्रेज़ो, आदि – में भी कम्यूनों की स्थापना हो गयी। यह इस बात का प्रमाण था कि पेरिस में जो जन विद्रोह फूटा था, वह फैलकर सारे देश को भी अपने घेरे में ले सकता था। लेकिन कम्यून के नेता आक्रामक कार्रवाइयों की नितान्त आवश्यकता को समझ नहीं सके। इसने पूँजीपति वर्ग के लिए देश के विभिन्न भागों में क्रान्ति के अलग-अलग केन्द्रों को कुचल देना सम्भव बना दिया। अप्रैल के आरम्भ तक प्रान्तों में इन सभी विद्रोहों को कुचला जा चुका था और बुर्जुआ प्रतिक्रान्तिकारी शक्तियों के लिए अपने सभी प्रयासों को पेरिस के विरुद्ध संकेन्द्रित कर देना सम्भव हो गया था।

इस समय तक पेरिस देश के अन्य भागों से कट चुका था। इन हालात में राजधानी के मज़दूर देहातों के किसान समुदाय के साथ आवश्यक गँठजोड़ क़ायम नहीं कर पाया। कम्यून के नेताओं को इस कार्यभार का अहसास था और क्रान्तिकारी सरकार ने किसानों को सम्बोधित बहुत-सी अपीलें भी जारी कीं। लेकिन कम्यूनार्ड किसान समुदाय के साथ मोर्चा बना पाने और उनके समर्थन का उपयोग कर सकने की स्थिति में किसी भी प्रकार नहीं थे।

कम्यून ने खेत मज़दूरों और किसानों से पेरिस कम्यून का साथ देने की अपील की। देहात में बड़ी संख्या में पर्चे बाँटे गये जिनमें यह सरल मगर शक्तिशाली सन्देश था: "हमारे हित एक ही हैं।" मज़दूरों ने उस वक़्त विज्ञान की नयी खोज, गर्म हवा के गुब्बारे का भी लाभ उठाया और देहातों में उससे पर्चे गिराये जिनमें कहा गया था: "गाँवों में रहने वाले लोगो, आप आसानी से देख सकते हैं कि जिन उद्देश्यों के लिए पेरिस लड़ रहा है, वे आपके भी हैं; यानी मज़दूर की मदद करके आप अपनी भी मदद कर रहे हैं। जो जनरल इस समय पेरिस पर हमला कर रहे हैं वे वही हैं जिन्होंने फ्रांस की रक्षा के साथ ग़द्दारी की थी।...अगर पेरिस की हार होती है, तो आपकी गर्दन पर रखा गुलामी का जुवा आपके बच्चों की गर्दन पर भी बना रहेगा। इसलिए पेरिस को जीतने में मदद करें। हर हाल में इन लक्ष्यों को याद रखें क्योंकि जब तक ये पूरे नहीं होंगे तब तक दुनिया में क्रान्तियाँ होती रहेंगी: ज़मीन जोतने वाले को, उत्पादन के साधन मज़दूर को, हर हाथ को काम।

इस चित्र में कम्यून को एक स्त्री के रूप में दिखाया गया है जो एक हाथ से "अज्ञान" को और दूसरे हाथ से "प्रतिक्रियावाद" नाम के दो बौने शैतानों को दबोचे हुए है।

कम्यून ने दकियानूसी और राजकाज में धर्म की दखल पर कैसी चोट की थी इसकी झलक नीचे दिये गये एक नोटिस को पढ़कर मिल जाती है। पेरिस में मोन्तमार्त्र के चर्च के बन्द दरवाज़ों पर चिपकाये गये इस नोटिस में लिखा था: "चूँकि पादरी डाकू होते हैं और चर्च उनके अड्डे जहाँ वे जनता की नैतिक हत्याएँ किया करते हैं, और फ्रांस को बदनाम बोनापार्त, फाव्र और त्रोचू (शासक और मंत्री) के आगे घुटने टेकने को मजबूर करते हैं; इसलिए पुराने पुलिस ज़िले के पत्थर काटने वाले कारीगरों के प्रतिनिधि यह आदेश देते हैं कि सेंट-पियेर का गिरजाघर बन्द कर दिया जाये, और इसके पादरियों तथा उनके मूढ़मति चेलों को गिरफ़्तार कर लिया जाये।"

पेरिस कम्यून के साथ एकजुटता प्रदर्शित करते हुए ब्रिटेन, जर्मनी और यूरोप के कई अन्य देशों में आन्दोलन उठ खड़े हुए। मार्क्स के प्रस्ताव पर इंटरनेशनल की जनरल काउंसिल ने पेरिस की घटनाओं के बारे में मज़दूरों को बताने के लिए अपने सदस्य जगह-जगह भेजने का प्रस्ताव पारित किया।

लन्दन में पेरिस कम्यून के समर्थन में एक प्रदर्शन का चित्र।

8. कम्यून की अगुवाई में समाज की जो सामाजिक और राजनीतिक शक्ल धीरे-धीरे उभर रही थी वह निस्सन्देह समाजवादी थी। लेकिन ऐसे किसी समाज की पहले से कोई नज़ीर नहीं थी, उनके पास कोई स्पष्ट और तैयार कार्यक्रम भी नहीं था, वे चारों ओर से ख़ून के प्यासे दुश्मनों से घिरे हुए थे और घेरेबन्दी तथा युद्ध ने भारी सामाजिक तथा आर्थिक अव्यवस्था पैदा कर दी थी। ऐसे में मज़दूरों को अपने हितों के अनुरूप समाज को संगठित करने की ठोस ज़रूरतों के मुताबिक तुरन्त-तुरन्त नये-नये निर्णय लेने पड़ते थे। उन्होंने बहुत-सी ग़लतियाँ कीं, लेकिन फिर भी, मज़दूरों द्वारा उठाये गये सभी महत्वपूर्ण क़दमों की दिशा उजरती मज़दूरों के वर्ग की सम्पूर्ण सामाजिक और आर्थिक मुक्ति की ओर संकेत करती थी। मगर कम्यून की त्रासदी यह थी कि उसे वक़्त बिल्कुल नहीं मिला। समाजवाद की दिशा में बढ़ने की किसी भी सम्भावना को थियेर की सेनाओं की वापसी और उसके बाद हुए भयानक ख़ूनख़राबे ने ख़त्म कर दिया।

...अगले अंक में जारी

पेरिस कम्यून : पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा (सातवीं किश्त)

आज भारत ही नहीं, पूरी दुनिया के मज़दूर पूँजी की लुटेरी ताक़त के तेज़ होते हमलों का सामना कर रहे हैं, और मज़दूर आन्दोलन बिखराव, ठहराव और हताशा का शिकार है। ऐसे में इतिहास के पन्ने पलटकर मज़दूर वर्ग के गौरवशाली संघर्षों से सीखने और उनसे प्रेरणा लेने की अहमियत बहुत बढ़ जाती है। आज से 141 वर्ष पहले, 18 मार्च 1871 को फ्रांस की राजधानी पेरिस में पहली बार मज़दूरों ने अपनी हुकूमत क़ायम की। इसे पेरिस कम्यून कहा गया। उन्होंने शोषकों की फैलायी इस सोच को ध्वस्त कर दिया कि मज़दूर राज-काज नहीं चला सकते। पेरिस के जाँबाज़ मज़दूरों ने न सिर्फ़ पूँजीवादी हुकूमत की चलती चक्की को उलटकर तोड़ डाला, बल्कि 72 दिनों के शासन के दौरान आने वाले दिनों का एक छोटा-सा मॉडल भी दुनिया के सामने पेश कर दिया कि समाजवादी समाज में भेदभाव, ग़ैर-बराबरी और शोषण को किस तरह ख़त्म किया जायेगा। आगे चलकर 1917 की रूसी मज़दूर क्रान्ति ने इसी कड़ी को आगे बढ़ाया।

मज़दूर वर्ग के इस साहसिक कारनामे से फ्रांस ही नहीं, सारी दुनिया के पूँजीपतियों के कलेजे काँप उठे। उन्होंने मज़दूरों के इस पहले राज्य का गला घोंट देने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया और आख़िरकार मज़दूरों के कम्यून को उन्होंने ख़ून की नदियों में डुबो दिया। लेकिन कम्यून के सिद्धान्त अमर हो गये। पेरिस कम्यून की हार से भी दुनिया के मज़दूर वर्ग ने बेशक़ीमती सबक़ सीखे। पेरिस के मज़दूरों की कुर्बानी मज़दूर वर्ग को याद दिलाती रहती है कि पूँजीवाद को मटियामेट किये बिना उसकी मुक्ति नहीं हो सकती।

'मज़दूर बिगुल' के मार्च 2012 अंक से हम दुनिया के पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा की शुरुआत की है, जो अगले कई अंकों में जारी रहेगी।

इस शृंखला की शुरुआती कुछ किश्तों में हमने पेरिस कम्यून की पृष्ठभूमि के तौर पर जाना कि पूँजी की सत्ता के ख़िलाफ़ मज़दूरों ने किस तरह लड़ना शुरू किया और किस तरह चार्टिस्ट आन्दोलन और 1848 की क्रान्तियों से गुज़रते हुए मज़दूर वर्ग की चेतना और संगठनबद्धता आगे बढ़ती गयी। हमने मज़दूरों की मुक्ति की वैज्ञानिक विचारधारा के विकास और पहले अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संगठन के बारे में जाना। पिछले अंकों में हमने जाना कि कम्यून की स्थापना कैसे हुई और उसकी रक्षा के लिए मेहनतकश जनता किस प्रकार बहादुरी के साथ लड़ी। हमने यह भी देखा कि कम्यून ने सच्चे जनवाद के उसूलों को इतिहास में पहली बार अमल में कैसे लागू किया और यह दिखाया कि "जनता की सत्ता" वास्तव में क्या होती है। – सम्पादक

वीर कम्यूनार्डों के रक्त से लिखा इतिहास का कड़वा सबक़

1. कम्यून ने जो ऐतिहासिक कदम उठाये, उन्हें लेकर वह बहुत दूर तक आगे नहीं चल सका। अपने जन्म से ही वह दुश्मनों से घिरा हुआ था, जो उसे नेस्तनाबूद करने पर तुले हुए थे। 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' के शब्दों के अनुसार बूढ़े यूरोप को "कम्युनिज़्म का जो हौवा" 1848 में ही सता रहा था, उसे साक्षात पेरिस में खड़ा देखकर यूरोप के सभी देशों के पूँजीपतियों के कलेजे दहल उठे थे। कम्यून को कुचलने के लिए सभी प्रतिक्रियावादी ताक़तें एकजुट हो गयी थीं। प्रशा (जर्मनी) के सैनिकों द्वारा कब्ज़ा करवाकर पेरिस को कुचल देने की पूँजीपतियों की पहली कोशिश नाकाम रही क्योंकि जर्मनी का शासक बिस्मार्क इसके लिए तैयार नहीं था। 18 मार्च को उन्होंने दूसरी कोशिश की जिसमें उनकी सेना की हार हुई और पूरी सरकार पेरिस छोड़कर वर्साय भाग चली। थियेर ने पेरिस के साथ सन्धि की बातचीत का दिखावा करके उसके विरुद्ध युद्ध की तैयारियाँ करने का मौक़ा हासिल किया। लेकिन उसकी बची-खुची सेना इस हाल में नहीं थी कि कम्यून का मुक़ाबला कर सके। कम्यूनार्डों की वीरता को देखकर थियेर को यह समझ में आ गया था कि पेरिस के प्रतिरोध को चूर कर पाना उसकी सामरिक प्रतिभा और सैन्य बल के बूते की बात नहीं है। इसलिए वह बिस्मार्क के भरोसे था।

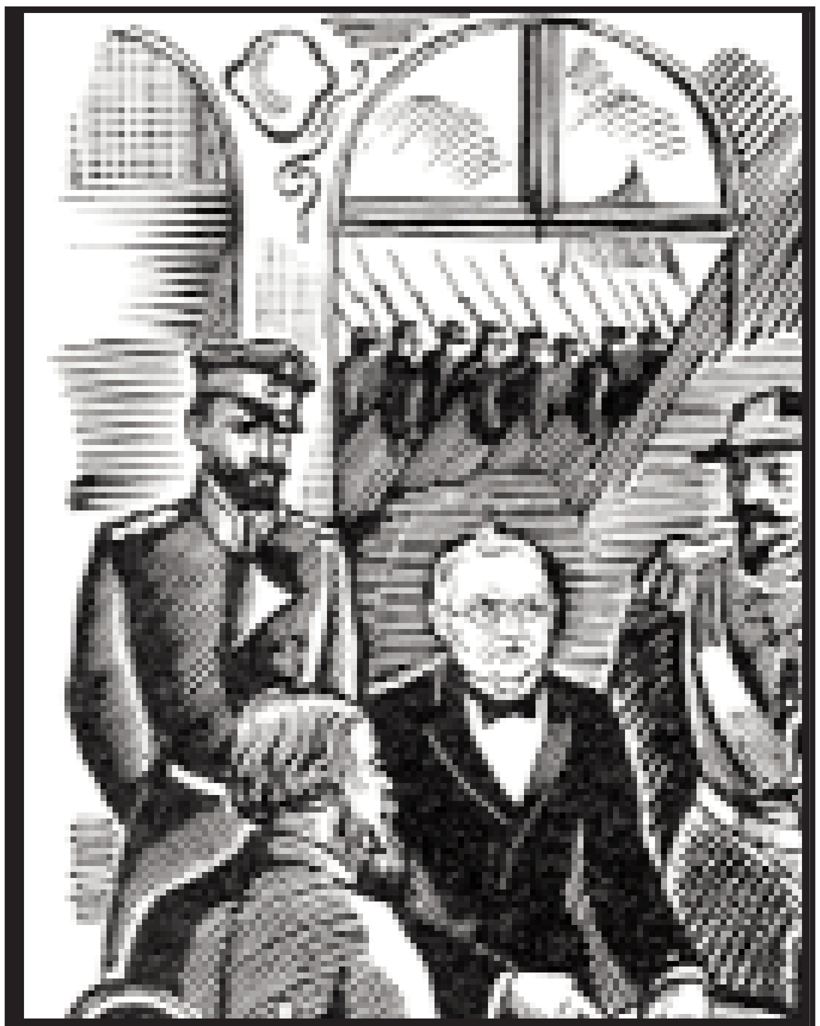

इसी दरम्यान वर्साय में थियेर और उसकी प्रतिक्रियावादी सरकार प्रशियाई अधिकारियों की सहायता से पेरिस कम्यून पर आक्रमण करने की योजना बना रही थी। लेकिन थियेर धोखाधड़ी की भाषा में बातें कर रहा था। 21 मार्च को, जब तक उसकी सेना नहीं बन पायी थी, थियेर ने राष्ट्रीय सभा में घोषणा की: "चाहे कुछ हो जाये, मैं पेरिस के विरुद्ध सेना नहीं भेजूँगा।"

कम्यूनार्ड भी अपनी तैयारी कर रहे थे। सड़कों पर बैरिकेड खड़े कर दिये गये। स्त्रियों और पुरुषों ने मिलकर इन्हें खड़ा किया और उन पर मोर्चा सँभाल लिया।

2. कार्ल मार्क्स यह स्पष्ट समझ रहे थे कि पेरिस कम्यून को कुचलने के लिये बिस्मार्क की जो प्रशियाई फौजें पेरिस के शहरपनाह के पास ही खड़ी थीं, वे या तो थियेर को मदद करतीं या फिर खुद ही पेरिस की ओर कूच कर देतीं। इसलिए वे लगातार राय दे रहे थे कि पेरिस कम्यून की जीत को पुख़्ता करने के लिए ज़रूरी है कि पेरिस की कामगारों की सेना पेरिस में प्रतिक्रान्ति की हर कोशिश को कुचलकर बिना रुके वर्साय की ओर कूच कर जाये जो थियेर सरकार के साथ ही पेरिस के सभी रईसों का पनाहगाह बना हुआ था। उनका कहना था कि इससे कम्यून की जीत और पुख़्ता हो जाती और सर्वहारा क्रान्ति पूरे देश में फैलायी जा सकती थी। बाद में यह सामने आया कि थियेर के पास उस समय कुल जमा 27 हजार पस्तहिम्मत फ़ौजी थे, जिन्हें पेरिस के एक लाख 'नेशनल गार्ड्स' चुटकी बजाते धूल चटा सकते थे।

3. लेकिन पेरिस कम्यून के बहादुर कम्यूनार्ड यहीं पर चूक गये। उन्होंने पेरिस में तो मज़दूर वर्ग की फ़ौलादी सत्ता क़ायम की और बुर्जुआ वर्ग के साथ कोई रू-रियायत नहीं बरती, लेकिन वे भूल गये कि पेरिस के बाहर थियेर के पीछे सिर्फ़ फ्रांस के ही नहीं, बल्कि पूरे यूरोप के प्रतिक्रियावादी एकजुट हो रहे हैं। मार्क्स ने कम्यून के प्रमुख नेताओं–फ्रांकेल और वाल्यां को आगाह किया कि पेरिस को घेरने के लिए थियेर और प्रशियाइयों के बीच सौदेबाज़ी हो सकती है, इसलिए प्रशियाई लश्करों को पीछे धकेलने के लिए मोंतमार्त्र पहाड़ी की उत्तरी पाख की किलेबन्दी कर लेनी चाहिये। मार्क्स इस बात को लेकर बहुत चिन्तित थे कि कम्यून वाले अपने को केवल बचाव तक सीमित रखकर बेशक़ीमती समय गँवा रहे हैं और वर्साय वालों को अपनी सेना मज़बूत कर लेने का मौक़ा दे रहे हैं। उन्होंने कम्यूनार्डों को लिखा कि प्रतिक्रियावाद की माँद को ध्वस्त कर डालिये, फ्रांसीसी राष्ट्रीय बैंक के ख़ज़ाने ज़ब्त कर लीजिये और क्रान्तिकारी पेरिस के लिए प्रान्तों का समर्थन हासिल कीजिये।

मज़दूरों के पहले राज की रक्षा के लिए पेरिस के तमाम मेहनतकश जीजान से लड़े। कम्यून के हर क़दम पर डटकर सक्रिय रही स्त्रियों ने बैरिकेडों की लड़ाई में भी बढ़चढ़कर हिस्सा लिया। कई बार जब उनके पुरुष साथी दुश्मन के हमलों के आगे हताश होने लगते थे तो स्त्रियाँ आगे बढ़कर उनका हौसला बढ़ाती थीं।

दस हज़ार मज़दूर औरतें पेरिस में लड़ाई के मोर्चे पर डटी थीं। इसके अलावा हज़ारों दूसरी औरतें प्रतिरक्षा के दूसरे कामों में, साजो-सामान की आपूर्ति, घायलों की तीमारदारी आदि में लगी हुई थीं।

4. लेकिन कम्यून ने वर्साय की ओर से उपस्थित ख़तरे को कम करके आँकने की भूल की। उसने न सिर्फ़ उस पर हमला करने की कोशिश नहीं की, बल्कि अपनी प्रतिरक्षा करने के लिए भी गम्भीरता से तैयारी नहीं की। 27 मार्च 1871 से ही वर्साय की सेना के अग्रिम मोर्चों और पेरिस के चारों ओर के परकोटों के बीच रह-रहकर गोलीबारी होने लगी थी। 2 अप्रैल को कम्यून की सेना की एक टुकड़ी जब कूर्बेवाई की ओर जा रही थी तो उस पर हमला किया गया। थियेर की सेना ने जिन सैनिकों को बन्दी बनाया उन्हें तुरन्त गोली मार दी गयी। अगले दिन, नेशनल गार्ड के दबाव में, कम्यून ने आख़िरकार वर्साय के विरुद्ध तीन ओर से हमला बोला। लेकिन कम्यून की बटालियनों के ज़बर्दस्त उत्साह के बावजूद, गम्भीर राजनीतिक और सैन्य तैयारी के अभाव के कारण देर से हुए इस हमले को हार का सामना करना पड़ा। इस हार से कम्यून को बहुत से हताहतों के रूप में भारी क़ीमत चुकानी पड़ी। उसके दो सक्षम कमाण्डर फ्लोरेंस और दूवाल को वर्साय की सेना ने बन्दी बनाने के बाद मौत के घाट उतार दिया।

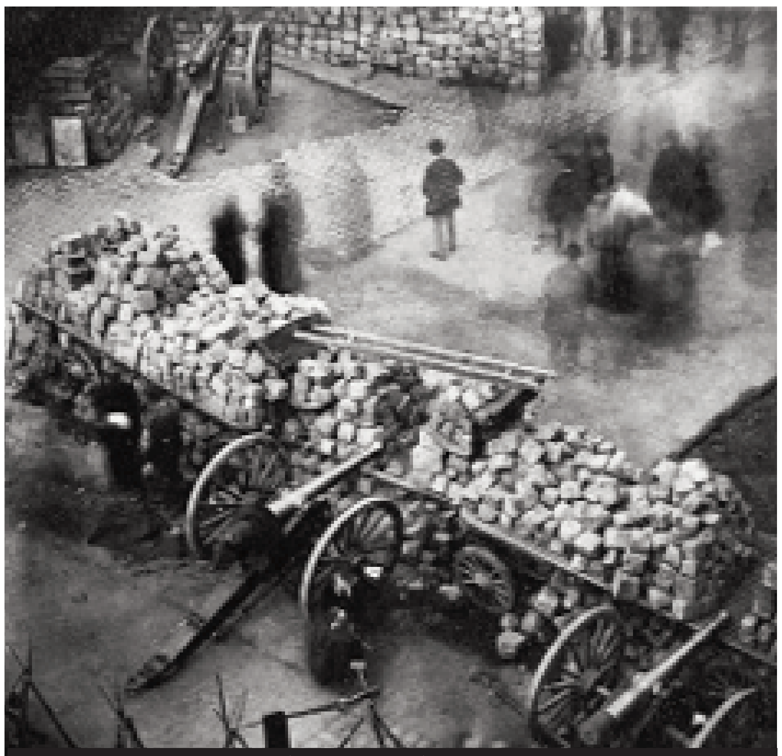

अब हर गली युद्ध का मैदान था और हर मकान एक क़िला। ऐसे भीषण हमले के आगे थके-माँदे कम्युनार्ड पीछे हटने को मजबूर थे जिसमें औरतों और बच्चों तक की जान नहीं बख़्शी गयी। एक सड़क पर मोर्चा बाँधकर लड़ते हुए कम्युनार्ड।

कम्यूनार्डों ने डटकर मुक़ाबला किया। लेकिन हमलावर फ़ौजों के आगे उन्हें पीछे हटना पड़ा और पेरिस के एक छोटे-से हिस्से में उन्होंने आख़िरी मोर्चा लिया।

भारी तोपखाने से लैस थियेर की सेना को रोकने के लिए पीछे हटते हुए कम्युनार्डों ने कई इमारतों को आग लगा दी। बुर्जुआ वर्ग के लेखक इस पर काफ़ी शोर मचाते रहे हैं और कम्युनार्डों को "असभ्य" और "आगज़नी पर उतारू पागल भीड़" बताते रहे हैं। मार्क्स ने ऐसे लोगों को करारा जवाब देते हुए लिखा था: "जब थियेर ने छह हफ़्तों तक पेरिस पर बमबारी की, यह कहते हुए कि वह केवल उन मकानों को आग लगाना चाहता है जिनमें लोग थे, तो क्या वह आगज़नी नहीं थी? – युद्ध में आग भी एक हथियार होता ही है। दुनिया की हर लड़ाई में सेनाएँ इमारतों को आग लगाती रही हैं। लेकिन अपने मालिकों के ख़िलाफ़ ग़ुलामों के युद्ध में, जो इतिहास में एकमात्र न्यायपूर्ण युद्ध है, इसे ग़लत बताया जाता है! कम्यून ने आग का इस्तेमाल केवल अपने बचाव के लिए किया। ...उन्होंने पहले ही चेतावनी दे दी थी कि अगर उन्हें मजबूर किया गया तो वे पेरिस के ध्वंसावशेषों में अपने को दफ़्न कर देंगे लेकिन हटेंगे नहीं। वे जानते थे कि उनके दुश्मनों के लिए पेरिस के लोगों की जान की कोई क़ीमत नहीं है लेकिन उन्हें पेरिस की अपनी इमारतें बहुत प्यारी हैं।"

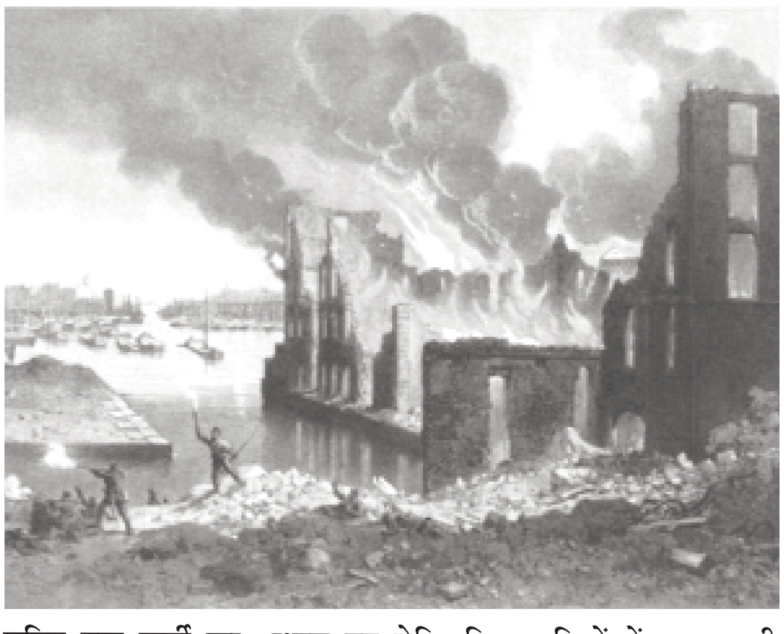

5. वैज्ञानिक समाजवाद के सिद्धान्तों पर गठित एक पार्टी का अभाव उन ऐतिहासिक घड़ियों में कम्यून की गतिविधियों को बुरी तरह प्रभावित कर रहा था। इण्टरनेशनल की फ्रांस शाखा सर्वहारा वर्ग का राजनीतिक हरावल बनने से चूक गयी थी। उसके अन्दर मार्क्सवादी विचारधारा के लोगों की संख्या भी बहुत कम थी। फ्रांसीसी मज़दूरों में सैद्धान्तिक पहलू बहुत कमज़ोर था। उस समय तक 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र','फ्रांस में वर्ग संघर्ष', 'पूँजी' आदि मार्क्स की प्रमुख रचनाएँ अभी फ्रांसीसी भाषा में प्रकाशित भी नहीं हुई थीं। कम्यून के नेतृत्व में बहुतेरे ब्लांकीवादी और प्रूधोंवादी शामिल थे, जो मार्क्सवादी सिद्धान्तों से या तो परिचित ही नहीं थे, या फिर उसके विरोधी थे। आम सर्वहाराओं द्वारा आगे ठेल दिये जाने पर उन्होंने सत्ता हाथ में लेने के बाद बहुतेरी चीज़ों को सही ढंग से अंजाम दिया और आने वाली सर्वहारा क्रान्तियों के लिए बहुमूल्य शिक्षाएँ दीं, पर अपनी राजनीतिक चेतना की कमी के कारण उन्होंने बहुतेरी ग़लतियाँ भी कीं। कम्यूनार्डों की एक बड़ी ग़लती यह थी कि वे दुश्मन की शान्तिवार्ताओं की धोखाधड़ी के शिकार हो गये और दुश्मन ने इस बीच युद्ध की तैयारियाँ मुकम्मिल कर लीं। जैसा कि मार्क्स ने लिखा है:"जब वर्साय अपने छुरे तेज़ कर रहा था, तो पेरिस मतदान में लगा हुआ था; जब वर्साय युद्ध की तैयारी कर रहा था तो पेरिस वार्ताएं कर रहा था।"दुश्मन का पूरी तरह सफ़ाया न करना, वर्साय पर हमला न करना, और क्रान्ति को पूरे देश में न फैलाना कम्यून वालों की सबसे बड़ी भूल थी और सच यह है कि नेतृत्व में मार्क्सवादी विचारधारा के अभाव के चलते यह गलती होनी ही थी।

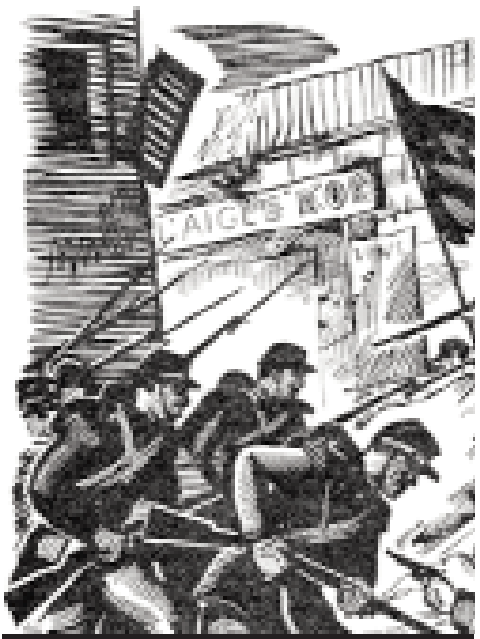

नगर के जलते खण्डहरों के बीच लड़ते हुए हज़ारों कम्यूनार्डों को क़ैद कर लिया गया। हज़ारों को वहीं मौत के घाट उतार दिया गया।

6. बेहद कठिन हालात के बावजूद और मेहनतकशों के नये राज्य के सामने उपस्थित अनगिनत कामों में लगे रहने के साथ ही कम्यूनार्डों ने दुश्मन का मुक़ाबला करने की तैयारियाँ भी शुरू कर दीं। दास-स्वामियों के विरुद्ध दासों के इस युद्ध में पेरिस की मेहनतकश जनता जीजान से लड़ने को तैयार थी। 1871 की मई आते-आते थियेर के सैनिकों ने पेरिस पर हमला बोल दिया। वर्साय के लुटेरों की भाड़े की सेना का कम्युनार्डों ने जमकर मुकाबला किया और एकबारगी तो उसे पीछे भी धकेल दिया, पर वर्साय की सेना पेरिस की घेरेबन्दी करके गोलाबारी करती रही। इसी दौरान प्रशा ने फ्रांस के बन्दी बनाये गये दसियों हज़ार सैनिकों को रिहा कर थियेर की भारी मदद की थी। थियेर की सेना दक्षिणी मोर्चे के दो किलों को जीतकर पेरिस की दहलीज़ पर पहुँच गयी। प्रशा की सेना ने भी आगे बढ़ने में उनकी परोक्ष मदद की। जो बुर्जुआ पेरिस में रह गये थे, उन्होंने वर्साय तक यह सूचना पहुँचा दी कि शहर में किन जगहों पर प्रतिरक्षा कमज़ोर है, और अरक्षित दरवाज़ों से फ़ौजें भीतर घुस आयीं। 21 मई 1871 को वर्साय का दस्युदल अपने कसाइयों के छुरों के साथ पेरिस में घुस पड़ा। शहर की सड़कों-चौराहों पर और विशेषकर मज़दूर बस्तियों में घमासान युद्ध हुआ। आख़िरकार, 8 दिनों के बेमिसाल बहादुराना संघर्ष के बाद पेरिस के बहादुर सर्वहारा योद्धा पराजित हो गये।

कई हज़ार लोगों को जिनमें बच्चे, बीमार और बूढ़े थे, हाँककर खुली जगहों में लाया गया और गोली मार दी गयी। सैकड़ों कम्युनार्डों को एक दीवार के सहारे खड़ा करके गोली मारी जा रही है।

और पेरिस के रईस, जिनमें से कई अब लौट आये थे, सड़क की पटरियों पर खड़े होकर इस घृणित तमाशे को देख रहे थे और इस जीत के लिए अपनी पीठ थपथपा रहे थे।

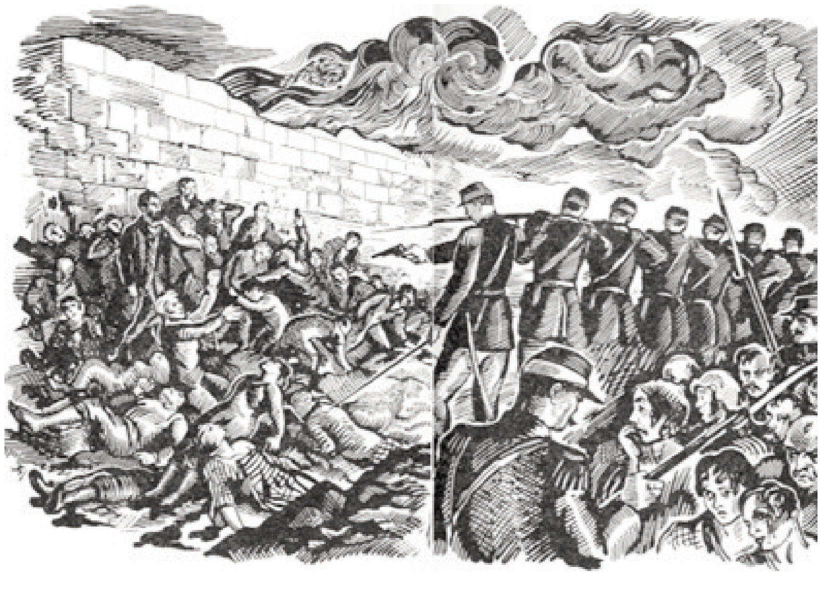

हज़ारों की संख्या में कम्यूनार्डों को घेरकर पेरे लाशेज़ क़ब्रगाह और दूसरी दर्जनभर जगहों पर ले जाकर गोलियों से भून दिया गया। दीवारों के साथ खड़ाकर निडर भीड़ पर जब सेना गोलियाँ बरसाती तो, पेरिस के मज़दूरों का हत्यारा, ज़नरल गैलीफ़ेट वहाँ खड़ा होकर तमाशा देखता था। लाशों के बड़े-बड़े टीले बन गये, जिनमें वे भी थे जिनकी अभी मौत नहीं हुई थी...

"कम्यूनार्डों की दीवार" का एक हिस्सा पेरिस में अभी भी मौजूद है, उस पर बनाये गये वीर कम्यूनार्डों के चेहरे पूँजीवादी शासन को चुनौती भी हैं और कम्यून के शहीदों का स्मारक भी है। यह सर्वहाराओं की आने वाली पीढ़ियों को कम्यून की इस शिक्षा की याद दिलाता रहता है कि भागते हुए डकैतों का अन्त तक पीछा किया जाना चाहिये, पानी में डूबते चूहों को तैरकर किनारे आने का मौक़ा नहीं देना चाहिये, दुश्मन को फिर से दम नहीं हासिल करने देना चाहिये और तब तक चैन की साँस नहीं लेनी चाहिये जब तक पूँजीवादी दुश्मन कहीं किसी भी कोने-अँतरे में जीवित हो।

7. पागलपन से भरी वर्साय सेना की हर टुकड़ी जल्लादों का गिरोह थी, जो कम्यून से सहानुभूति रखने का सन्देह होते ही हर व्यक्ति को फ़ौरन मौत के घात उतार देती थी। इस ख़ूनी सप्ताह में 30,000 कामगार कम्यून की रक्षा करते हुए शहीद हो गये। विजयी प्रतिक्रियावादियों ने सड़कों पर दमन का जो ताण्डव किया, उसकी इतिहास में कोई मिसाल नहीं मिलती। नागरिकों को कतारों में खड़ा किया जाता था और हाथों के घट्ठों को देखकर कामगारों को अलग करके गोली मार दी जाती थी। गिरफ़्तार लोगों के अतिरिक्त चर्च में शरण लिये हुए लोगों और अस्पतालों में घायल पड़े सैनिकों को भी गोली मार दी गयी। उन्होंने बुज़ुर्ग मज़दूरों को यह कहते हुए गोली मार दी कि 'इन्होंने बार-बार बग़ावतें की हैं और ये खाँटी अपराधी हैं।' औरत-मज़दूरों को यह कहकर गोली मार दी गयी कि ये "स्त्री अग्नि बम" हैं और यह कि ये "सिर्फ़ मरने के बाद ही" औरतों जैसी लगती हैं। मज़दूरों के बच्चों को यह कहकर गोली मार दी गयी कि "ये बड़े होकर बाग़ी बनेंगे।" मज़दूरों के क़त्लेआम का सिलसिला पूरे जून भर चलता रहा जिसमें कम से कम 20,000 लोग और मारे गये। पेरिस लाशों से पट गया। सैन नदी ख़ून की नदी बन गयी। कम्यून ख़ून के समन्दर में डुबो दिया गया। कम्यूनार्डों के रक्त से इतिहास ने मज़दूरों के लिए यह कड़वी शिक्षा लिखी कि सर्वहारा वर्ग को क्रान्ति को अन्त तक चलाना होगा। सत्ता न तो शान्तिपूर्वक मिलेगी, न ही शान्तिपूर्वक उसकी हिफ़ाज़त की जा सकेगी।

...अगले अंक में जारी

पेरिस कम्यून : पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा (आठवीं किश्त)

आज भारत ही नहीं, पूरी दुनिया के मज़दूर पूँजी की लुटेरी ताक़त के तेज़ होते हमलों का सामना कर रहे हैं, और मज़दूर आन्दोलन बिखराव, ठहराव और हताशा का शिकार है। ऐसे में इतिहास के पन्ने पलटकर मज़दूर वर्ग के गौरवशाली संघर्षों से सीखने और उनसे प्रेरणा लेने की अहमियत बहुत बढ़ जाती है। आज से 141 वर्ष पहले, 18 मार्च 1871 को फ्रांस की राजधानी पेरिस में पहली बार मज़दूरों ने अपनी हुकूमत क़ायम की। इसे पेरिस कम्यून कहा गया। उन्होंने शोषकों की फैलायी इस सोच को ध्वस्त कर दिया कि मज़दूर राज-काज नहीं चला सकते। पेरिस के जाँबाज़ मज़दूरों ने न सिर्फ़ पूँजीवादी हुकूमत की चलती चक्की को उलटकर तोड़ डाला, बल्कि 72 दिनों के शासन के दौरान आने वाले दिनों का एक छोटा-सा मॉडल भी दुनिया के सामने पेश कर दिया कि समाजवादी समाज में भेदभाव, ग़ैर-बराबरी और शोषण को किस तरह ख़त्म किया जायेगा। आगे चलकर 1917 की रूसी मज़दूर क्रान्ति ने इसी कड़ी को आगे बढ़ाया।

मज़दूर वर्ग के इस साहसिक कारनामे से फ्रांस ही नहीं, सारी दुनिया के पूँजीपतियों के कलेजे काँप उठे। उन्होंने मज़दूरों के इस पहले राज्य का गला घोंट देने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया और आख़िरकार मज़दूरों के कम्यून को उन्होंने ख़ून की नदियों में डुबो दिया। लेकिन कम्यून के सिद्धान्त अमर हो गये। पेरिस कम्यून की हार से भी दुनिया के मज़दूर वर्ग ने बेशक़ीमती सबक़ सीखे। पेरिस के मज़दूरों की क़ुर्बानी मज़दूर वर्ग को याद दिलाती रहती है कि पूँजीवाद को मटियामेट किये बिना उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। 'मज़दूर बिगुल' के मार्च 2012 अंक से हम दुनिया के पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा की शुरुआत की है, जो अगले कई अंकों में जारी रहेगी।

इस शृंखला की शुरुआती कुछ किश्तों में हमने पेरिस कम्यून की पृष्ठभूमि के तौर पर जाना कि पूँजी की सत्ता के ख़िलाफ़ मज़दूरों ने किस तरह लड़ना शुरू किया और किस तरह चार्टिस्ट आन्दोलन और 1848 की क्रान्तियों से गुज़रते हुए मज़दूर वर्ग की चेतना और संगठनबद्धता आगे बढ़ती गयी। हमने मज़दूरों की मुक्ति की वैज्ञानिक विचारधारा के विकास और पहले अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संगठन के बारे में जाना। पिछले अंकों में हमने जाना कि कम्यून की स्थापना कैसे हुई और उसकी रक्षा के लिए मेहनतकश जनता किस प्रकार बहादुरी के साथ लड़ी। हमने यह भी देखा कि कम्यून ने सच्चे जनवाद के उसूलों को इतिहास में पहली बार अमल में कैसे लागू किया और यह दिखाया कि "जनता की सत्ता" वास्तव में क्या होती है। अब हम उन ग़लतियों पर नज़र डाल रहे हैं जिनकी वजह से कम्यून की पराजय हुई। इन ग़लतियों को ठीक से समझना और पूँजीवाद के ख़िलाफ़ निर्णायक जंग में जीत के लिए उनसे सबक़ निकालना मज़दूर वर्ग के लिए बहुत ज़रूरी है। – सम्पादक

कम्यून ने सिखाया – पूँजीवाद के विरुद्ध लड़ाई में उदारता, शिथिलता या हिचकिचाहट का नतीजा होता है रक्तरंजित हार!

पेरिस के वीर कम्युनार्ड बेहद बहादुरी के साथ लड़ रहे थे लेकिन आख़िरकार उन्हें पूँजीपतियों की पूरी संगठित शक्ति के आगे हार का सामना करना पड़ा। फ्रांस ही नहीं, पूरे यूरोप के पूँजीपति मज़दूरों के इस पहले राज्य को धूल में मिला देने के लिए एकजुट और आमादा थे। कम्युनार्डों के ज़बर्दस्त संघर्ष से वे भयाक्रान्त थे लेकिन धूर्त शिकारियों की तरह वे मज़दूरों की ओर से होने वाली किसी भी ग़लती की ताक में लगे हुए थे और किसी भी ग़लती का फ़ायदा उठाने का मौक़ा नहीं चूकते थे। और अपनी बहादुरी के बावजूद कम्यून के रक्षकों ने उन्हें अपनी ताक़त बटोरने और हमला करने के कई मौक़े दे दिये। इनको ध्यान से समझने और इनसे सीखने की ज़रूरत है।

चित्र में: दुश्मन से छीनी एक तोप के साथ पेरिस के मज़दूरों का रक्षक दल

1. कम्यून की भारी तबाही का पहला कारण यह था कि कम्यून की स्थापना के पहले और बाद दोनों ही दौरों में एक अनुशासित, सुगठित क्रान्तिकारी नेतृत्व का अभाव था। मज़दूर वर्ग की ऐसी कोई भी एकताबद्ध और विचारधारात्मक रूप से मज़बूत राजनीतिक पार्टी नहीं थी जो जनता के इस प्रारम्भिक उभार की अगुवाई कर सके। नेतृत्व के लिए कई ग्रुपों में प्रतिस्पर्धा हुई – इनमें प्रूधोंवादी, ब्लांकीवादी और इण्टरनेशनलवादी सबसे अधिक लोगों का प्रतिनिधित्व करते थे। इससे कम्यून में लगातार भ्रम और अनिर्णय की स्थिति बनी रही, योजना की कमी और एक दूरगामी कार्यक्रम का अभाव बना रहा। रणकौशल की पूरी उपेक्षा और तेज़ी के साथ विकसित हो रही क्रान्तिकारी परिस्थिति में टुकड़े-टुकड़े, रोज़मर्रा के ढंग से काम करना इन नेताओं का जैसे तरीक़ा बन चुका था।

2. उभार के शुरुआती दिनों में जो सीमित प्राधिकार था उसे भी बाद में छोड़ दिया गया। जैसा कि मार्क्स ने अपने मित्र कुगेलमान को 12 अप्रैल, 1871 को लिखे प्रसिद्ध पत्र में कहा था, "(नेशनल गार्ड की) केन्द्रीय समिति ने अपनी शक्तियों को बहुत जल्दी ही छोड़ दिया और उन्हें कम्यून को हस्तान्तरित कर दिया।" मार्क्स, जो केन्द्रीयतावाद के हिमायती थे, इस बात को समझ चुके थे कि पेरिस के मज़दूर सेना को अपने कमान में रखने वाली एक केन्द्रीकृत क्रान्तिकारी प्राधिकार (अथॉरिटी) के नेतृत्व में ही थियेर सरकार के ख़िलाफ़ एक सफल राजनीतिक संघर्ष संचालित कर सकते थे। नेशनल गार्ड की केन्द्रीय समिति ऐसा ही प्राधिकार था, परन्तु अपनी शक्तियों की तिलांजलि देकर और अपना प्राधिकार ढीले-ढाले ढंग से गठित कम्यून को हस्तान्तरित कर इसने अपनी सशस्त्र सेना की क्रान्तिकारी ऊर्जा को बिखरा दिया।

3. इसके बावजूद, कम्यून की कमज़ोरियों का विश्लेषण करने के साथ ही, मार्क्स ने कम्युनार्डों के क्रान्तिकारी जोश के प्रति ज़बर्दस्त उत्साह प्रदर्शित किया। ऊपर हमने कुगेलमान को लिखे जिस पत्र का उल्लेख किया है, वह कम्यून की घोषणा के तीन सप्ताह बाद लिखा गया था। पत्र में मार्क्स ने उत्कट उत्साह के साथ लिखा था, "कैसी निपुणता! इन पेरिसवासियों ने कैसी ऐतिहासिक पहलक़दमी, आत्मोत्सर्ग का कैसा सामर्थ्य दिखाया है। छह महीने की भूख और तबाही के बाद, जो विदेशी दुश्मन से ज़्यादा भितरघात के चलते थी, वे प्रशियाई संगीनों के साये में इस तरह उठ खड़े हुए मानो फ्रांस और जर्मनी के बीच कोई युद्ध छिड़ा ही न हो, जैसे कि पेरिस के दहलीज़ पर दुश्मन हो ही नहीं। इतिहास में ऐसी बहादुरी की कोई मिसाल नहीं मिलती।" और इसके तुरन्त बाद उन्होंने उस ग़लती की आलोचना रखी जो कम्यून की सबसे भारी ग़लतियों में से एक थी, "यदि उनकी पराजय होती है तो यह उनकी 'दरियादिली' के कारण होगी। जैसे ही विनी और नेशनल गार्ड का प्रतिक्रियावादी हिस्सा पेरिस से निकल भागा वैसे ही उन्हें वर्साय की तरफ तत्काल कूच कर देना चाहिए था। 'ईमानदारी' के चलते हाथ आये मौक़े को गँवा दिया गया। वे गृहयुद्ध शुरू नहीं करना चाहते थे – मानो कि नृशंस थियेर ने पेरिस को निश्शस्त्र करने की अपनी कोशिशों से इसकी शुरुआत पहले ही नहीं कर दी थी।"

मज़दूरों के पेरिस की रक्षा में मुस्तैद बहादुर स्त्री-पुरुष

4. क्रान्तिकारी रणनीतिकार, मार्क्स, इस बात को समझ गये थे कि क्रान्तिकारी पेरिस का दुश्मन जब भाग रहा था तो नेशनल गार्ड का यह काम बनता था वह उसे अपनी शक्ति को फिर से संगठित करने और लौटकर पेरिस के मज़दूरों पर धावा बोलने का मौका देने की जगह थियेर की पराजित सेना का पीछा करे और उसका ख़ात्मा कर दे। मगर कम्यून इस बात को नहीं समझ सका। कम्यून के नेताओं की 'दरियादिली' ने, जिसकी मार्क्स ने इतनी आलोचना की है, थियेर सरकार और उसके प्रतिक्रियावादी पिट्ठुओं को शान्तिपूर्वक वर्साय चले जाने का, वहाँ अपनी ताकत को पुनः संगठित करने और कम्यून के ख़िलाफ़ षड्यन्त्र रचने का मौका दिया। इसी उदारता के चलते उन्होंने उन प्रमुख बुर्जुआ नेताओं को बन्धक नहीं बनाया जो शहर में बने रहे और जिन्होंने भेदियों के रूप में काम करने तथा वहाँ प्रतिक्रान्तिकारी गतिविधियों के केन्द्र बनाने के लिए इस मौक़े का फ़ायदा उठाया। यदि कम्यून ने उन फ़ौजी दस्तों से, जो प्रतिक्रियावादी सरकार के प्रभाव में थे, हथियार ले लिये होते और उन्हें शहर में रोक लिया होता, तो उसके एक बड़े हिस्से को वह अपने पक्ष में कर सकता था और दूसरों को तटस्थ बना सकता था। इसके बजाय उन्हें आज़ादी के साथ वर्साय जाने और वहाँ प्रतिक्रियावादी सैन्यवादियों के निरन्तर संरक्षण में रहने का मौक़ा दिया गया।

वर्साय की सत्ता ने गिरफ़्तार किये गये कम्युनार्डों के साथ भी बर्बरता दिखाने में कोई कमी नहीं छोड़ी। ऊपर एक जेल में पकड़े गये कम्युनार्ड स्त्री-पुरुषों को गोली मारी जा रही है।

पेरिस के बाहरी किनारों पर लड़ाई के मोर्चे पर तैनात नेशनल गार्ड और कम्युनार्ड

5. पेरिस कम्यून मज़दूर वर्ग द्वारा सत्ता के लिए एक संघर्ष था। संघर्ष के विकसित होने के साथ पेरिस के मज़दूरों ने जिस बदलाव को देखा था वह सिर्फ प्रशासन में बदलाव भर नहीं था। उनके नेताओं में सर्वाधिक स्पष्ट समझ वाले लोग, इण्टरनेशनल के सिद्धान्तों पर चलने वाले लोग, यह जानते थे कि यह संघर्ष सामाजिक क्रान्ति का रूप ग्रहण कर रहा है, हालाँकि वे और अन्य लोग भी इस संघर्ष के दिशा-निर्धारण के लिए आवश्यक रणकौशल बनाने में विफल रहे। कुगेलमान को लिखे दूसरे पत्र (17 अप्रैल) में मार्क्स ने निम्नलिखित शब्दों में अपनी व्याख्या रखी, "पेरिस कम्यून के कारण ही यह मुमकिन हुआ कि पूँजीपति वर्ग और उसकी राज्य मशीनरी के विरुद्ध संघर्ष एक नये चरण में प्रवेश कर गया। इसका जो भी अन्त होगा, अन्तरराष्ट्रीय महत्व की एक नयी घटना सम्पन्न हो चुकी है।"

मार्क्स के इस कथन के बारे में, कि पेरिस के मज़दूरों को संघर्ष में उतरना पड़ेगा, लेनिन ने लिखा, "मार्क्स इस बात को समझ सकते थे कि इतिहास में कुछ क्षण ऐसे भी आते हैं जब, जीत की उम्मीद न होते हुए भी, जनता की भावी शिक्षा और अगले संघर्ष के अभ्यास के लिए जनता का संघर्ष आवश्यक हो जाता है।"

बुर्जुआ सेनाओं द्वारा पेरिस में मचायी गयी तबाही का मंज़र

कम्यून को कुचले जाने के बाद हज़ारों की तादाद में मेहनतकशों को गिरफ़्तार किया गया। बहुतों को मौत की सज़ा दी गयी और हज़ारों को देश निकाले की।

पेरिस में चप्पे-चप्पे के लिए घमासान लड़ाई हुई। आख़िरी दम तक कम्युनार्डों ने बहादुरी से मुकाबला किया। शहर की एक सड़क पर लड़ाई का दृश्य।

6. चर्च को राज्य से अलग करने, चर्च की सम्पत्ति के राज्य द्वारा अधिग्रहण, उजड़ गयी फैक्टरियों को अपने हाथ में लेने, मज़दूरों पर जुर्माना लगाने सम्बन्धी प्रावधानों को ख़त्म, नानबाई की दुकानों में रात के समय काम की पाबन्दी लगाने जैसी कम्यून द्वारा जारी आज्ञप्तियाँ अत्यन्त सामाजिक महत्व के काम थे। ये मज़दूरों की ऐसी सरकार के काम थे जो मज़दूर वर्ग के हित में क़ानून बना रही थी।
परन्त कम्यून ने सभी फ़ैक्टरियों को अपने अधिकार में नहीं लिया। इसने बैंक ऑफ़ फ्रांस को अपने क़ब्ज़े में नहीं लिया। बल्कि वह अपने क्रान्तिकारी मक़सद की पूर्ति के लिए वहाँ कर्ज़ माँगने गया। बैंक को कब्ज़े में नहीं लेना कम्यून की एक और बड़ी ग़लती थी। इस धन का इस्तेमाल कम्यून को कुचलने में किया गया।

वर्साय की सेना ने पेरिस पर कब्ज़ा करने के बाद क्रूरतम कत्लेआम मचाया। सड़कों पर लोगों को उनके हाथों के घट्ठे देखकर पहचाना जाता था कि वे मज़दूर हैं और वहीं गोली मार दी जाती थी।
चित्र में: गोली से उड़ाये गये कम्युनार्डों के ताबूत। ये दृश्य हमारी स्मृतियों से कभी ओझल नहीं होने चाहिए...

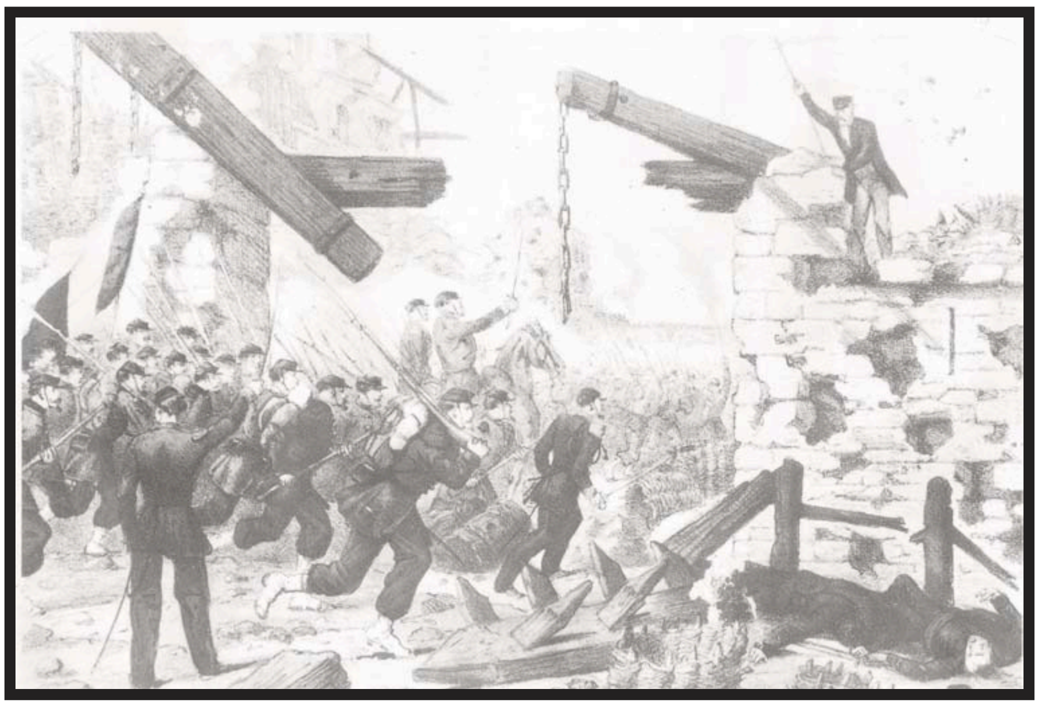

7. कम्यून ने हालाँकि राज्य की सत्ता को अपने क़ब्ज़े में ले लिया था, पर उसने राज्य के पुराने ढांचे के भीतर ही राजकाज चलाने की कोशिश की। मार्क्स ने एक अप्रैल के अपने पत्र में इसके ख़िलाफ़ चेतावनी देते हुए लिखा, "नौकरशाहाना राजनीतिक उपकरण को चकनाचूर कर देना" सर्वहारा क्रान्ति की एक पूर्वशर्त है। कम्यून के मूल्यांकन सम्बन्धी अपने क्लासिक अध्ययन फ्रांस में गृहयुद्ध में, जिसे कम्यून की पराजय के दो दिन बाद पहले इण्टरनेशनल की आम परिषद की बैठक में सम्बोधन के रूप में प्रस्तुत किया गया था, मार्क्स ने इस विषय पर अपना ध्यान केन्द्रित किया और यह सैद्धान्तिक निष्कर्ष प्रस्तुत किया, "मज़दूर वर्ग बनी-बनायी राज्य मशीनरी को जस का तस हाथ में नहीं ले सकता और उसे अपना उद्देश्य पूरा करने के लिए इस्तेमाल नहीं कर सकता।"

8. 1891 में कम्यून की बीसवीं बरसी पर एंगेल्स ने फ्रांस में गृहयुद्ध के नये जर्मन संस्करण की भूमिका लिखी। बैंक ऑफ़ फ्रांस को अपने अधिकार में लेकर उसका अपने हित में इस्तेमाल न कर पाने के लिए कम्यून की आलोचना करते हुए एंगेल्स यह रेखांकित करते हैं कि कम्यून ने सरकार की पुरानी मशीनरी को नष्ट करने के बजाय उसीका इस्तेमाल करने की कोशिश की। मार्क्स ने अपने 'सम्बोधन' में जिस बात की चर्चा की थी, एंगेल्स ने उसी पर ज़ोर देते हुए कहा कि "कम्यून को यह समझना चाहिए था कि सत्ता पर अधिकार करने के बाद मज़दूर राज्यसत्ता के पुराने ढाँचे से, उसी मशीनरी से, जिसका इस्तेमाल पहले उनके शोषण के लिए होता था, शासन नहीं चला सकते।" एंगेल्स इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि "वास्तव में, राजशाही की तरह ही किसी जनवादी गणतन्त्र में भी राज्य एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के उत्पीड़न के उपकरण के सिवाय और कुछ नहीं होता है।"

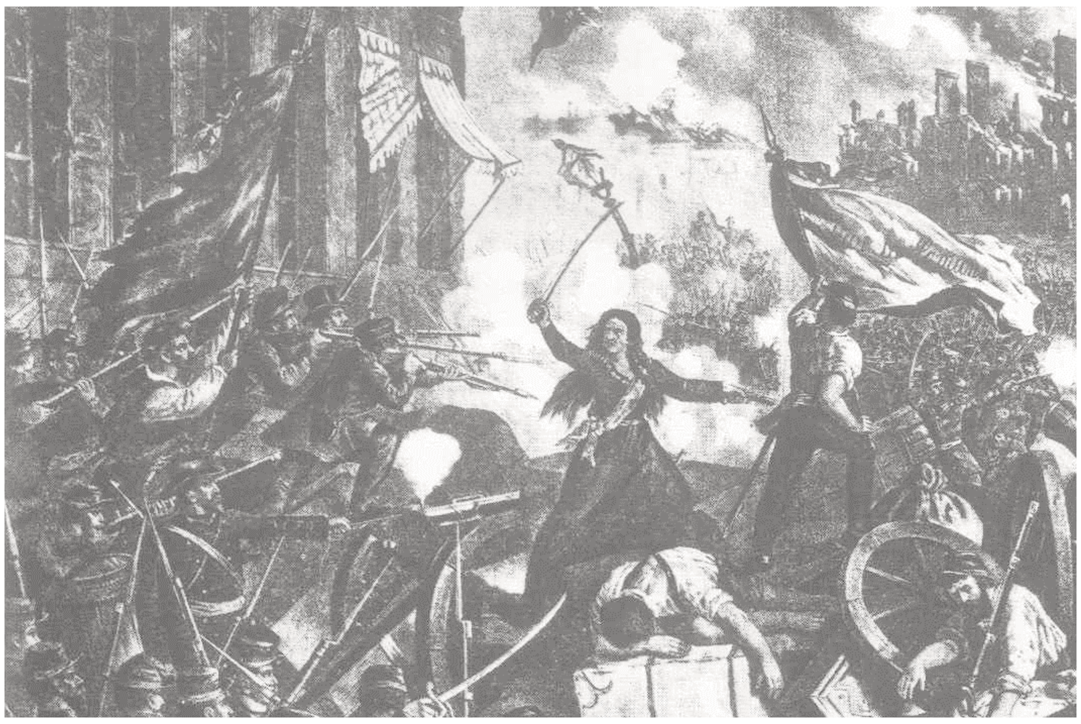

ऊपर और दायें के चित्रों में: पेरिस में अपनी आख़िरी जंग लड़ते कम्युनार्ड। बायें: कम्यून की पराजय के बाद मज़दूरों से छीने गये हथियारों को नष्ट करते हुए वर्साय के सैनिक

पेरिस कम्यून : पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा (नौवीं किश्त)

आज भारत ही नहीं, पूरी दुनिया के मज़दूर पूँजी की लुटेरी ताक़त के तेज़ होते हमलों का सामना कर रहे हैं, और मज़दूर आन्दोलन बिखराव, ठहराव और हताशा का शिकार है। ऐसे में इतिहास के पन्ने पलटकर मज़दूर वर्ग के गौरवशाली संघर्षों से सीखने और उनसे प्रेरणा लेने की अहमियत बहुत बढ़ जाती है। आज से 141 वर्ष पहले, 18 मार्च 1871 को फ्रांस की राजधानी पेरिस में पहली बार मज़दूरों ने अपनी हुकूमत क़ायम की। इसे पेरिस कम्यून कहा गया। उन्होंने शोषकों की फैलायी इस सोच को ध्वस्त कर दिया कि मज़दूर राज-काज नहीं चला सकते। पेरिस के जाँबाज़ मज़दूरों ने न सिर्फ़ पूँजीवादी हुकूमत की चलती चक्की को उलटकर तोड़ डाला, बल्कि 72 दिनों के शासन के दौरान आने वाले दिनों का एक छोटा-सा मॉडल भी दुनिया के सामने पेश कर दिया कि समाजवादी समाज में भेदभाव, ग़ैर-बराबरी और शोषण को किस तरह ख़त्म किया जायेगा। आगे चलकर 1917 की रूसी मज़दूर क्रान्ति ने इसी कड़ी को आगे बढ़ाया।

मज़दूर वर्ग के इस साहसिक कारनामे से फ्रांस ही नहीं, सारी दुनिया के पूँजीपतियों के कलेजे काँप उठे। उन्होंने मज़दूरों के इस पहले राज्य का गला घोंट देने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया और आख़िरकार मज़दूरों के कम्यून को उन्होंने ख़ून की नदियों में डुबो दिया। लेकिन कम्यून के सिद्धान्त अमर हो गये। पेरिस कम्यून की हार से भी दुनिया के मज़दूर वर्ग ने बेशक़ीमती सबक़ सीखे। पेरिस के मज़दूरों की क़ुर्बानी मज़दूर वर्ग को याद दिलाती रहती है कि पूँजीवाद को मटियामेट किये बिना उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। 'मज़दूर बिगुल' के मार्च 2012 अंक से दुनिया के पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा की शुरुआत की गयी थी, जिसकी अब तक आठ किस्तें प्रकाशित हुई हैं। पिछले कुछ अंकों से इसका प्रकाशन नहीं हो पा रहा था लेकिन इस अंक से हम इसे फिर शुरू कर रहे हैं।

इस श्रृंखला की शुरुआती कुछ किश्तों में हमने पेरिस कम्यून की पृष्ठभूमि के तौर पर जाना कि पूँजी की सत्ता के ख़िलाफ़ मज़दूरों का संघर्ष किस तरह क़दम-ब-क़दम विकसित हुआ। हमने जाना कि कम्यून की स्थापना कैसे हुई और उसकी रक्षा के लिए मेहनतकश जनता किस प्रकार बहादुरी के साथ लड़ी। हमने यह भी देखा कि कम्यून ने सच्चे जनवाद के उसूलों को इतिहास में पहली बार अमल में कैसे लागू किया और यह दिखाया कि "जनता की सत्ता" वास्तव में क्या होती है। पिछली कड़ी से हम उन ग़लतियों पर नज़र डाल रहे हैं जिनकी वजह से कम्यून की पराजय हुई। इन ग़लतियों को ठीक से समझना और पूँजीवाद के ख़िलाफ़ निर्णायक जंग में जीत के लिए उनसे सबक़ निकालना मज़दूर वर्ग के लिए बहुत ज़रूरी है।

मज़दूर वर्ग के लिए पेरिस कम्यून के ऐतिहासिक सबक

1. कम्यून ने जो ऐतिहासिक कदम उठाये, उन्हें लेकर वह बहुत दूर तक आगे नहीं चल सका। अपने जन्म से ही वह दुश्मनों से घिरा हुआ था, जो उसे नेस्तनाबूद करने पर तुले हुए थे। **'कम्युनिस्ट घोषणापत्र'** के शब्दों के अनुसार; बूढ़े यूरोप को **"कम्युनिज्म का जो हौवा"** 1848 में ही सता रहा था, उसे साक्षात पेरिस में खड़ा देखकर यूरोप के सभी देशों के पूँजीपतियों के कलेजे दहल उठे थे। कम्यून को कुचलने के लिए सभी प्रतिक्रियावादी ताकतें एकजुट हो गई थीं। पेरिस के मज़दूरों के विद्रोह के ठीक पूर्व **मार्क्स** और **एंगेल्स** का यह आकलन था कि अभी इसके लिए परिस्थितियाँ पूरी तरह तैयार नहीं हैं। उनका सुझाव था कि क्रान्ति कुछ और तैयारियों के बाद शुरू की जानी चाहिये। पर एक बार जब पेरिस कम्यून अस्तित्व में आ गया तो उन्होंने उसका क्रान्तिकारी अभिनन्दन और पुरज़ोर समर्थन किया। मार्क्स ने समाजवाद के उस शिशु मॉडल का अत्यन्त बारीकी से अध्ययन किया जो पेरिस के मज़दूरों ने अपनी पहलकदमी और सामूहिक रचनात्मकता से खड़ा किया था। इसके साथ ही मार्क्स कम्यून के भविष्य को लेकर लगातार बहुत अधिक चिन्तित थे और अपने सम्पर्कों तथा इण्टरनेशनल की फ्रांस शाखा के ज़रिये कम्यून को लगातार अपने सुझाव दे रहे थे।

बैरिकेडों पर संघर्ष की तैयारी में जुटी पेरिस की मेहनतकश जनता।
पेरिस कम्यून के बहादुर कम्यूनार्डों ने पेरिस में तो मज़दूर वर्ग की फौलादी सत्ता कायम की और बुर्जुआ वर्ग के साथ कोई रू-रियायत नहीं बरती, लेकिन वे भूल गये कि पेरिस के बाहर थियेर के पीछे सिर्फ फ्रांस के ही नहीं, बल्कि पूरे यूरोप के प्रतिक्रियावादी एकजुट हो रहे हैं।

2. मार्क्स यह स्पष्ट समझ रहे थे कि पेरिस कम्यून को कुचलने के लिये बिस्मार्क की जो प्रशियाई फौजें पेरिस के शहरपनाह के पास ही खड़ी थीं, वे या तो थियेर को मदद करतीं या फिर खुद ही पेरिस की ओर कूच कर देतीं। इसलिए वे लगातार राय दे रहे थे कि पेरिस कम्यून की जीत को पुख्ता करने के लिए जरूरी है कि पेरिस की कामगारों की सेना पेरिस में प्रतिक्रान्ति की हर कोशिश को कुचलकर बिना रुके वर्साय की ओर कूच कर जाये जो थियेर सरकार के साथ ही पेरिस के सभी रईसों का पनाहगाह बना हुआ था। उनका कहना था कि इससे कम्यून की जीत और पुख्ता हो जाती और सर्वहारा क्रान्ति पूरे देश में फैलायी जा सकती थी। यह भेद बाद में खुला कि थियेर के पास उस समय कुल जमा 27 हजार पस्तहिम्मत फौजी थे, जिन्हें पेरिस के एक लाख 'नेशनल गार्ड्स' चुटकी बजाते धूल चटा सकते थे।

मार्क्स ने कम्यून के प्रमुख नेताओं–फ्रांकेल और वाल्यां को आगाह किया कि पेरिस को घेरने के लिए थियेर और प्रशियाइयों के बीच सौदेबाज़ी हो सकती है, अत: प्रशियाई लश्करों को पीछे धकेलने के लिए मोंतमात्र पहाड़ी की उत्तरी पाख की किलेबन्दी कर लेनी चाहिये। मार्क्स इस बात को लेकर बहुत चिन्तित थे कि कम्यून वाले अपने को महज़ बचाव ही बचाव तक सीमित रखकर बेशकीमती समय गँवा रहे हैं और वर्साय वालों को अपने सैन्यबल की किलेबन्दी कर लेने का मौक़ा दे रहे हैं। उन्हों कम्यूनार्डो को लिखा कि **प्रतिक्रियावादी की माँद को ध्वस्त कर डालिये, फ्रांसीसी राष्ट्रीय बैंक के खज़ाने ज़ब्त कर लीजिये और क्रान्तिकारी पेरिस के लिए प्रान्तों का समर्थन हासिल कीजिये।**

एक कम्युनार्ड वीरांगना। बुर्जुआ सेना इन लड़ाकू स्त्रियों से ख़ास तौर पर भय खाती थी। कम्यून की पराजय के बाद ढूँढ़कर उन्हें गोली मारी गयी।

3. मार्क्स को यह भी स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि वैज्ञानिक समाजवाद के सिद्धान्तों पर गठित एक पार्टी का अभाव उन ऐतिहासिक घड़ियों में कम्यून की गतिविधियों को बुरी तरह प्रभावित कर रहा था। इंटरनेशनल की फ्रांस शाखा सर्वहारा वर्ग का राजनीतिक हरावल बनने से चूक गई थी। उसके अन्दर मार्क्सवादी विचारधारा के लोगों की संख्या भी बहुत कम थी। फ्रांसीसी मज़दूरों में सैद्धान्तिक पहलू बहुत कमज़ोर था। उस समय तक 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र', 'फ्रांस में वर्ग संघर्ष', 'पूँजी' आदि मार्क्स की प्रमुख रचनाएँ अभी फ्रांसीसी भाषा में प्रकाशित भी नहीं हुई थीं। कम्यून के नेतृत्व में बहुतेरे ब्लांकीवादी और प्रूधोंवादी शामिल थे, जो मार्क्सवादी सिद्धान्तों से या तो परिचित ही नहीं थे, या फिर उसके विरोधी थे। आम सर्वहाराओं द्वारा आगे ठेल दिये जाने पर उन्होंने सत्ता हाथ में लेने के बाद बहुतेरी चीज़ों को सही ढंग से अंजाम दिया और आने वाली सर्वहारा क्रान्तियों के लिए बहुमूल्य शिक्षाएँ दीं, पर अपनी राजनीतिक चेतना की कमी के कारण उन्होंने बहुतेरी गलतियाँ भी कीं।

कम्यूनार्डों की एक अहम गलती यह थी कि वे दुश्मन की शान्तिवार्ताओं की धोखाधड़ी के शिकार हो गये और दुश्मन ने इस बीच युद्ध की तैयारियाँ मुकम्मिल कर लीं। दुश्मन का पूरी तरह सफाया न करना, वर्साय पर हमला न करना, और क्रान्ति को पूरे देश में न फैलाना कम्यून वालों की सबसे बड़ी भूल थी और सच यह है कि नेतृत्व में मार्क्सवादी विचारधारा के अभाव के चलते यह गलती होनी ही थी।

ज़बर्दस्त लड़ाई के बीच थोड़ी देर सुस्ताते और आगे की रणनीति बनाते वीर कम्युनार्ड। संघर्ष ने पेरिस के मेहनतकशों के बीच ज़बर्दस्त एकजुटता की भावना पैदा कर दी थी।

4. मार्क्स ने बाद में लिखा, **"जब वर्साय अपने छुरे तेज कर रहा था, तो पेरिस मतदान में लगा हुआ था; जब वर्साय युद्ध की तैयारी कर रहा था तो पेरिस वार्ताएँ कर रहा था।"** इसका नतीजा यह हुआ कि 1871 की मई आते-आते थियेर के सैनिकों ने पेरिस पर हमला बोल दिया। वर्साय के लुटेरों की भाड़े की सेना का कम्युनार्डों ने जमकर मुकाबला किया और एकबारगी तो उसे पीछे भी धकेल दिया, पर वर्साय की सेना पेरिस की घेरेबन्दी करके गोलाबारी करती रही। इसी दौरान प्रशा ने फ्रांस के बन्दी बनाये गये दसियों हज़ार सैनिकों को रिहा कर थियेर की भारी मदद की थी। थियेर की सेना दक्षिणी मोर्चे के दो किलों को जीतकर पेरिस की दहलीज पर पहुँच गई। प्रशा की सेना ने भी आगे बढ़ने में उनकी परोक्ष मदद की। 21 मई 1871 को वर्साय का दस्युदल अपने कसाइयों के छुरों के साथ पेरिस में घुस पड़ा। शहर की सड़कों-चौराहों पर और विशेषकर मज़दूर बस्तियों में घमासान युद्ध हुआ।

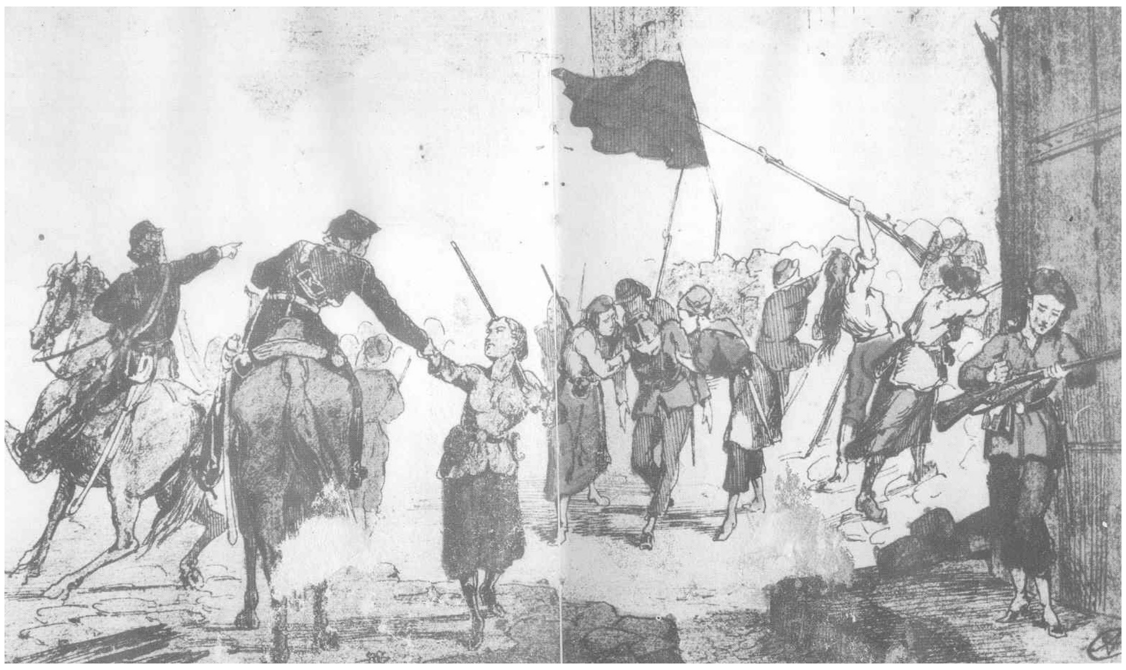

कम्यून की रक्षा के लिए लड़ने वालों में स्त्रियाँ हर कदम पर आगे थीं। घुड़सवार सेना के साथ मोर्चा लेती हुई स्त्रियों की टुकड़ी।
नीचे बायें: सेना ने जलते हुए पेरिस के खण्डहरों के बीच घेरकर मज़दूरों का कत्लेआम किया।

5. शहर की सड़कों-चौराहों पर और विशेषकर मज़दूर बस्तियों में घमासान युद्ध हुआ। आखिरकार, 8 दिनों के बेमिसाल बहादुराना संघर्ष के बाद पेरिस के बहादुर सर्वहारा योद्धा पराजित हो गये। इस खूनी सप्ताह में 30,000 कामगार कम्यून की रक्षा करते हुए शहीद हो गये। विजयी प्रतिक्रियावादियों ने सड़कों पर दमन का जो ताण्डव किया, वह बेमिसाल था। नागरिकों को कतारों मे खड़ाकर, हाथों के घट्ठों को देखकर कामगारों को अलग करके गोली मार दी जाती थी। गिरफ्तार लोगों के अतिरिक्त चर्च में शरण लिये लोगों और अस्पतालों में घायल पड़े सैनिकों को भी गोली मार दी गयी। उन्होंने बुजुर्ग मज़दूरों को यह कहते हुए गोली मार दी कि 'इन्होंने बार-बार बगावतें की हैं और ये खाँटी अपराधी हैं।' औरत-मज़दूरों को यह कहकर गोली मार दी गयी कि ये "स्त्री अग्नि बम" हैं और यह कि ये "सिर्फ मरने के बाद ही" औरतों जैसी लगती हैं। बाल मज़दूरों को यह कहकर गोली मार दी गई कि "ये बड़े होकर बागी बनेंगे।" यह नरसंहार पूरे जून के महीने चलता रहा। पेरिस लाशों से पट गया। सैन नदी खून की नदी बन गयी।

कम्युनार्डों ने बड़ी बहादुरी के साथ सेना का मुकाबला किया लेकिन अब तक सेना को पूरी तैयारी का मौका मिल चुका था। उसके पास हथियार और सैनिक भी ज़्यादा थे। एक-एक सड़क पर जूझने के बावजूद आख़िर उन्हें हारना पड़ा। पेरिस के सारे अमीर जो डर से भाग गये थे, अब मज़दूरों के कत्लेआम का नज़ारा देखने के लिए लौट आये थे। सड़कों के किनारे खड़े होकर वे तालियाँ बजाते थे जब मज़दूरों को गोली मारी जाती थी।

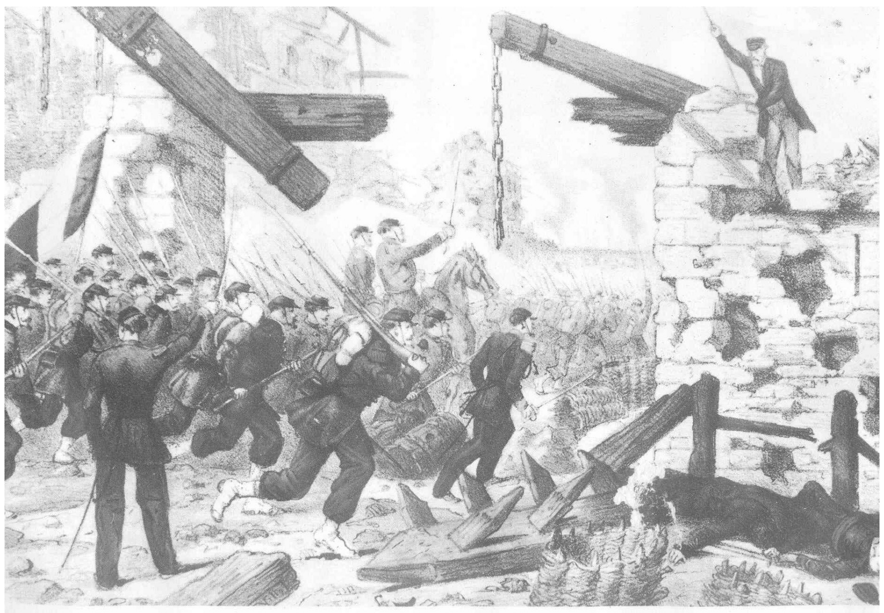

6. कम्यून खून के समन्दर में डुबो दिया गया। कम्यूनार्डों के रक्त से इतिहास ने मज़दूरों के लिए यह कड़वी शिक्षा लिखी कि सर्वहारा वर्ग को क्रान्ति को अन्त तक चलाना होगा। सत्ता न तो शान्तिपूर्वक मिलेगी, न ही शान्तिपूर्वक उसकी हिफ़ाजत की जा सकेगी। कम्यून की यह शिक्षा थी कि भागते हुए डकैतों का अन्त तक पीछा किया जाना चाहिये, पानी में डूबते चूहों को तैरकर किनारे आने का मौका नहीं देना चाहिये, दुश्मन को फिर से दम नहीं हासिल करने देना चाहिये और तब तक चैन की सांस नहीं लेनी चाहिये जब तक पूंजीवादी दुश्मन कहीं किसी भी कोने-अंतरे में जीवित हो। पेरिस कम्यून के बाद भी, विश्व इतिहास में मज़दूर वर्ग जब-जब इन शिक्षाओं को भूला, तब-तब उसे शिकस्त मिली।

7. पेरिस कम्यून के शहीदों ने अपने रक्त से एक अमिट इतिहास लिख डाला, सर्वहारा वर्ग की आगे की क्रान्तियों के मार्गदर्शन के लिए उन्होंने बहुमूल्य शिक्षाएं दीं और अपनी शहादतों से रोशनी की एक मीनार खड़ी कर दी।

कम्यून के जीवनकाल में ही कार्ल मार्क्स ने लिखा था : **"यदि कम्यून को नष्ट भी कर दिया गया, तब भी संघर्ष सिर्फ स्थगित होगा। कम्यून के सिद्धान्त शाश्वत और अनश्वर हैं, जब तक मज़दूर वर्ग मुक्त नहीं हो जाता, तब तक ये सिद्धान्त बार-बार प्रकट होते रहेंगे।"** मज़दूरों की पहली हथियारबन्द बगावत और पहली सर्वहारा सत्ता की अहमियत के नजरिये से ही मार्क्स ने कहा था, **"18 मार्च का गौरवमय आन्दोलन मानव जाति को वर्ग-शासन से सदा के लिए मुक्त कराने वाला महान सामाजिक क्रान्ति का प्रभात है।"**

मज़दूरों के कत्लेआम का नज़ारे देखने के लिए सड़कों के किनारे जुटे पेरिस के हरामख़ोर अमीर और कुलीन लोग।

8. पेरिस में कम्यून की पराजय के दो दिनों बाद, मार्क्स ने 30 मई , 1871 को पहले इण्टरनेशनल की सामान्य परिषद की बैठक में कम्यून का मूल्यांकन करते हुए एक रिपोर्ट पढ़ी। यही रिपोर्ट 'फ्रांस में गृहयु)' शीर्षक प्रसि) कृति है, जो आज भी हम सबके लिए एक बेहद जरूरी किताब है।

मार्क्स ने कम्यून की परिस्थितियों, कारणों और अनुभवों का निचोड़ निकालते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि **"मज़दूर वर्ग बनी-बनाई राज्य मशीनरी को ज्यों का त्यों हाथ में नहीं ले सकता और उसे अपना मकसद पूरा करने के लिए इस्तेमाल नहीं कर सकता।ह उन्होंने बताया कि सर्वहारा वर्ग को पुरानी राज्य मशीनरी को 'तोड़ने' और 'चकनाचूर करने के लिए' क्रान्तिकारी हिंसा का इस्तेमाल करना चाहिये तथा सर्वहारा अधिनाकत्व को लागू करना चाहिए।"**

9. इस तरह मार्क्स और एंगेल्स ने पेरिस कम्यून के अनुभवों के आधार पर क्रान्ति के विज्ञान में एक महत्वपूर्ण इजाफ़ा किया, जैसा कि लेनिन ने बताया था कि मार्क्सवादी वह नहीं है जो सिर्फ़ वर्ग-संघर्ष को मानता है, बल्कि वह है जो वर्ग-संघर्ष के साथ सर्वहारा अधिनायकत्व को भी मानता है।

मार्क्स ने बुर्जुआ और सर्वहारा राज्यसत्ता के प्रश्न पर जो मौलिक विचार रखा तथा लेनिन ने जिसे आगे बढ़ाया, उसका स्पष्ट प्रस्थान बिन्दु पेरिस कम्यून की शिक्षाओं से ही होता है। मार्क्स ने यह स्पष्ट किया कि हसर्वहारा अधिनायकत्व का पहला अवयव सर्वहारा वर्ग की सेना है। मज़दूर वर्ग को अपनी मुक्ति का अधिकार यु)भूमि में प्राप्त करना चाहिये।ह

पेरिस कम्यून की असफ़लता का निचोड़ निकालते हुए मार्क्स और एंगेल्स ने यह और अधिक स्पष्ट किया कि सर्वहारा वर्ग की सत्ता शस्त्रबल से हासिल होती है और इसी के सहारे कायम रह सकती है। यह तभी कायम रह सकती है जबकि बुर्जुआ वर्ग की सत्ता को ध्वस्त करने के बाद भी उसे सम्भलने का मौका न दिया जाये और उसके समूल नाश के लिए जंग जारी रखी जाये।

अगले अंक में जारी...

पेरिस कम्यून : पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा (दसवीं किस्त)

आज भारत ही नहीं, पूरी दुनिया के मज़दूर पूँजी की लुटेरी ताक़त के तेज़ होते हमलों का सामना कर रहे हैं, और मज़दूर आन्दोलन बिखराब, ठहराव और हताशा का शिकार है। ऐसे में इतिहास के पन्ने पलटकर मज़दूर वर्ग के गौरवशाली संघर्षों से सीखने और उनसे प्रेरणा लेने की अहमियत बहुत बढ़ जाती है। आज से 141 वर्ष पहले, 18 मार्च 1871 को फ्रांस की राजधानी पेरिस में पहली बार मज़दूरों ने अपनी हुकूमत क़ायम की। इसे पेरिस कम्यून कहा गया। उन्होंने शोषकों की फैलायी इस सोच को ध्वस्त कर दिया कि मज़दूर राज-काज नहीं चला सकते। पेरिस के जाँबाज़ मज़दूरों ने न सिर्फ़ पूँजीवादी हुकूमत की चलती चक्की को उलटकर तोड़ डाला, बल्कि 72 दिनों के शासन के दौरान आने वाले दिनों का एक छोटा-सा मॉडल भी दुनिया के सामने पेश कर दिया कि समाजवादी समाज में भेदभाव, ग़ैर-बराबरी और शोषण को किस तरह ख़त्म किया जायेगा। आगे चलकर 1917 की रूसी मज़दूर क्रान्ति ने इसी कड़ी को आगे बढ़ाया।

मज़दूर वर्ग के इस साहसिक कारनामे से फ्रांस ही नहीं, सारी दुनिया के पूँजीपतियों के कलेजे काँप उठे। उन्होंने मज़दूरों के इस पहले राज्य का गला घोंट देने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया और आख़िरकार मज़दूरों के कम्यून को उन्होंने ख़ून की नदियों में डुबो दिया। लेकिन कम्यून के सिद्धान्त अमर हो गये। पेरिस कम्यून की हार से भी दुनिया के मज़दूर वर्ग ने बेशक़ीमती सबक़ सीखे। पेरिस के मज़दूरों की क़ुर्बानी मज़दूर वर्ग को याद दिलाती रहती है कि पूँजीवाद को मटियामेट किये बिना उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। 'मज़दूर बिगुल' के मार्च 2012 अंक से दुनिया के पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा की शुरुआत की गयी थी, जिसकी अब तक नौ किस्तें प्रकाशित हुई हैं। पिछले कुछ अंकों से इसका प्रकाशन नहीं हो पा रहा था लेकिन पिछले अंक से हमने इसे फिर शुरू किया है।

इस श्रृंखला की शुरुआती कुछ किश्तों में हमने पेरिस कम्यून की पृष्ठभूमि के तौर पर जाना कि पूँजी की सत्ता के ख़िलाफ़ मज़दूरों का संघर्ष किस तरह क़दम-ब-क़दम विकसित हुआ। हमने जाना कि कम्यून की स्थापना कैसे हुई और उसकी रक्षा के लिए मेहनतकश जनता किस प्रकार बहादुरी के साथ लड़ी। हमने यह भी देखा कि कम्यून ने सच्चे जनवाद के उसूलों को इतिहास में पहली बार अमल में कैसे लागू किया और यह दिखाया कि "जनता की सत्ता" वास्तव में क्या होती है। पिछली कड़ी से हम उन ग़लतियों पर नज़र डाल रहे हैं जिनकी वजह से कम्यून की पराजय हुई। इन ग़लतियों को ठीक से समझना और पूँजीवाद के ख़िलाफ़ निर्णायक जंग में जीत के लिए उनसे सबक़ निकालना मज़दूर वर्ग के लिए बहुत ज़रूरी है।

कम्यून की हिफ़ाज़त में अन्तिम दम तक लड़े मज़दूर

1. कम्यून के सदस्य बहुमत (यानी ब्लांकीवादी, जिनकी राष्ट्रीय गार्ड की केन्द्रीय समिति में प्रधानता थी) और अल्पमत (यानी अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर-संघ, पहले इण्टरनेशनल के सदस्य, जिनमें मुख्यत: प्रूदों के समाजवादी मत के अनुयायी थे) में बँटे हुए थे। ब्लांकीवादियों का प्रबल बहुमत केवल क्रान्तिकारी सर्वहारा की सहज-प्रवृत्ति के कारण समाजवादी था; उनमें से केवल कुछ ही के पास अपेक्षाकृत अधिक सैद्धान्तिक समझ थी। इसलिए यह बात समझ में आती है कि आर्थिक क्षेत्र में बहुत से ऐसे काम नहीं किये गये जिन्हें कम्यून को करना चाहिये था। मार्क्स ने इस बात पर हैरानी ज़ाहिर की कि बैंक-ऑफ़-फ्रांस के फाटक के सामने वे क्यों इस तरह अदब के साथ खड़े रहे, जैसे कि बैंक कोई देवस्थान हो? यह एक संगीन राजनीतिक भूल थी। कम्यून के हाथों में बैंक का होना दस हज़ार बन्धकों से अधिक मूल्यवान वस्तु होती। ऐसा होने पर पूरा फ्रांसीसी पूँजीपति वर्ग वर्साय-सरकार पर कम्यून के साथ सुलह कर लेने के लिए दबाव डालता। लेकिन इस ग़लती के बावजूद, ब्लांकीवादियों और प्रूदोंवादियों द्वारा गठित कम्यून ने जो कुछ किया वह ज़्यादातर सही था। कम्यून के प्रूदोंवादी सदस्य उसके आर्थिक आदेशों के लिए, उनके प्रशंसनीय और अप्रशंसनीय दोनों पहलुओं के लिए, मुख्यत: जिम्मेदार थे; और उसकी राजनीतिक कार्रवाइयों या ग़लतियों के लिए मुख्यत: ब्लांकीवादी सदस्य ज़िम्मेदार थे और दिलचस्प बात यह है कि इन दोनों ने उस समय की परिस्थितियों में अपनी-अपनी विचारधारा से ठीक उल्टा कार्य किया।।

ऊपर: कम्यून के लाल झण्डे तले पूँजीपतियों की फ़ौज के साथ आर-पार के मुक़ाबले में जुटे नेशनल गार्ड के सैनिक और पेरिस के जांबाज़ मज़दूर।

दायें: बैरिकेडों पर संघर्ष की तैयारी में लगे हुए पेरिस के मेहनतकश लोग।

पेरिस कम्यून के बहादुर रक्षकों ने शहर में तो मज़दूर वर्ग की फौलादी सत्ता कायम की और बुर्जुआ वर्ग के साथ कोई रियायत नहीं बरती, लेकिन वे भूल गये कि पेरिस के बाहर थियेर के पीछे सिर्फ़ फ्रांस के ही नहीं, बल्कि पूरे यूरोप के प्रतिक्रियावादी एकजुट हो रहे हैं। इस चूक की क़ीमत उन्हें अपने ख़ून से चुकानी पड़ी।

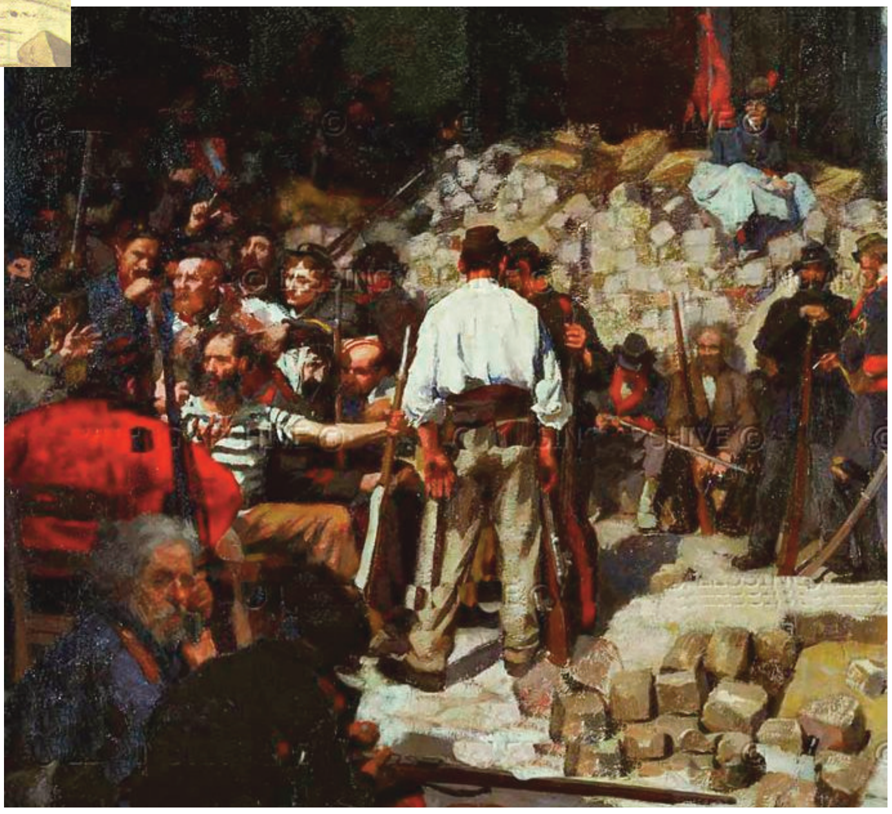

2. छोटे किसानों और दस्तकार उस्तादों का समर्थक प्रूदों संघबद्धता से सख़्त नफ़रत करता था। उसका कहना था कि संघबद्धता में अच्छाई से अधिक बुराई है, क्योंकि वह मज़दूर की स्वतंत्रता के लिए बन्धन है। केवल बड़े पैमाने के उद्योगों और संस्थापनों, उदाहरणार्थ रेलवे में, जिन्हें प्रूदों ने अपवाद कहा, मज़दूरों का संघ उपयुक्त था। लेकिन 1871 में कलात्मक दस्तकारी के केन्द्र पेरिस तक में बड़े पैमाने का उद्योग अपवाद नहीं रह गया था। कम्यून की अपेक्षाकृत सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण आज्ञप्ति द्वारा बड़े पैमाने के उद्योग का, मैनुफेक्चर तक का संगठन खड़ा किया गया जिसे प्रत्येक फ़ैक्टरी के मज़दूरों के संघ पर ही आधारित नहीं होना था, बल्कि इन सब संघों को एक बड़ी यूनियन में संयुक्त भी करना था यानी एक ऐसा संगठन जो अनिवार्यत: अन्त में कम्युनिज़्म, यानी प्रूदों के मत से ठीक उल्टी चीज़ का मार्ग प्रशस्त करता।

4. कम्यून आरम्भ से ही यह महसूस करने को बाध्य हुआ था कि मज़दूर वर्ग एक बार सत्ता पा लेने पर पुरानी राज्य-मशीनरी से काम नहीं चला सकता। उसने यह समझ लिया कि अपनी प्रभुता को सुरक्षित रखने के लिए इस मज़दूर वर्ग को एक ओर तो पुराने दमनकारी राज्यतंत्र को, जो पहले उसके ख़िलाफ़ इस्तेमाल किया जाता था, ख़त्म करना होगा और दूसरी ओर उसे अपने ही प्रतिनिधियों और अफ़सरों से अपनी हिफ़ाजत करने के लिए यह घोषित करना होगा कि उनमें से किसी को भी, बिना अपवाद के, किसी भी क्षण हटाया जा सकेगा। कम्यून के पदाधिकारियों से लेकर अफ़सर और मजिस्ट्रेट तक, सभी सीधे जनता द्वारा चुने जाते थे और उन्हें हटाया जा सकता था।

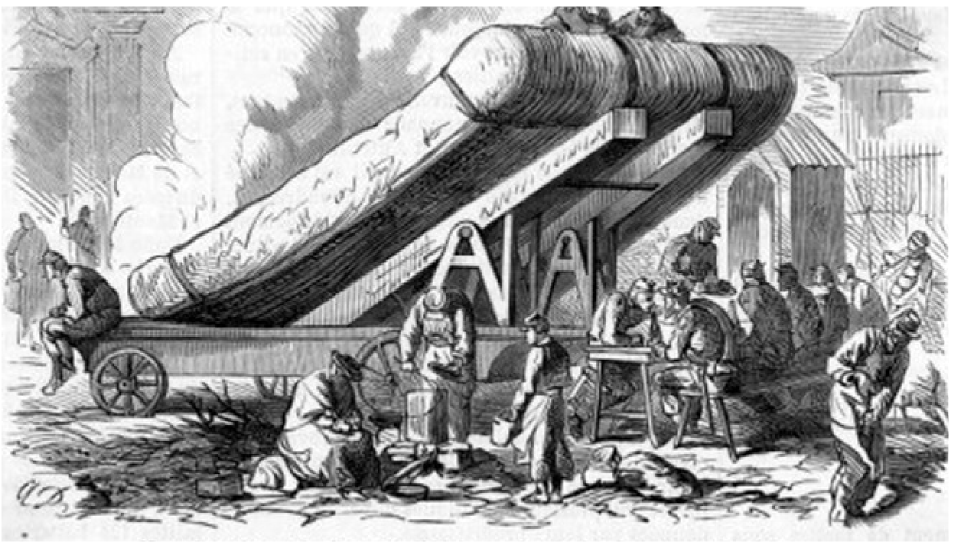

कम्यून की रक्षा की लड़ाई में सड़कों पर खड़े किये गये बैरिकेडों की बहुत बड़ी भूमिका थी। ऊपर के चित्र में जनता द्वारा बनाया गया एक यंत्र दिख रहा है जिसका इस्तेमाल बैरिकेड बनाने में किया जाता था। ऊपर बायें चित्र में एक बैरिकेड पर तैनात नेशनल गार्ड के योद्धा लाल झण्डे के साथ।

3. ब्लांकीवादियों के लिए क्रान्ति का मतलब था षड्यंत्र। उनका मूल दृष्टिकोण यह था कि अपेक्षाकृत थोड़े-से दृढ़संकल्प और सुसंगठित लोग, अनुकूल अवसर पर, न केवल राज्य की बागडोर अपनी मुट्ठी में कर सकते हैं, बल्कि ज़बरदस्त और निष्ठुर शक्ति का प्रदर्शन करते हुए, तब तक सत्ता को अपने हाथ में रख सकते हैं, जब तक वे आम जनता को क्रान्ति में खींच लाने तथा उन्हें नेताओं के एक छोटे से दल के चारों ओर एकजुट कर देने में सफल नहीं होते। इसका अर्थ यह था कि नयी क्रान्तिकारी सरकार के हाथ में सम्पूर्ण सत्ता कठोरतमरूप में केन्द्रीकृत होनी चाहिये। पर वास्तव में कम्यून ने, जिसमें इन्हीं ब्लांकीवादियों का बहुमत था, क्या किया? प्रान्तों में बसने वाले फ्रांसीसियों के नाम अपनी सभी घोषणाओं में उसने अपील की कि वे पेरिस के साथ सभी फ्रांसीसी कम्यूनों का एक स्वतंत्र संघ बनायें, एक ऐसा राष्ट्रीय संगठन बनायें, जो पहली बार स्वयं राष्ट्र द्वारा निर्मित किया जाये।

5. पेरिस कम्यून को फ्रांस के सभी बड़े औद्योगिक केन्द्रों के लिए उदाहरण बन जाना था। पेरिस तथा माध्यमिक केन्द्रों में सामुदायिक शासन-व्यवस्था की एक बार स्थापना हो जाने के बाद प्रान्तों में भी पुरानी केन्द्रीभूत सरकार को हटा कर वहाँ उत्पादकों का स्वशासन क़ायम किया जाता। राष्ट्रीय संगठन के एक प्राथमिक खाके में, जिसे विशद बनाने का कम्यून को समय नहीं मिल सका, कम्यून ने स्पष्ट रूप से कहा था कि छोटे से छोटे पुरवे का भी राजनीतिक ढाँचा कम्यून होगा और देहाती इलाकों में स्थायी सेना का स्थान राष्ट्रीय मिलीशिया लेगी जिसकी सेवा-अवधि अल्पकालिक होगी। प्रत्येक ज़िले के ग्रामीण कम्यून अपने केन्द्रीय नगर में, प्रतिनिधियों की एक सभा द्वारा, अपने सम्मिलित मामलों का प्रबन्ध करेंगे। ये ज़िला सभाएँ पेरिस-स्थित राष्ट्रीय प्रतिनिधि-सभा में अपने प्रतिनिधि भेजेंगी। प्रत्येक प्रतिनिधि किसी भी समय वापस बुलाया जा सकेगा और वह अपने निर्वाचकों की औपचारिक हिदायतों से बँधा होगा। कम्यून के शासन में राष्ट्र की एकता भंग नहीं होती, बल्कि इसके विपरीत, कम्यून के संविधान द्वारा वह संगठित की जाती और पूँजीवादी राज्य-सत्ता के विनाश द्वारा वास्तविक राष्ट्रीय एकता क़ायम होती। पुरानी शासन-सत्ता के वे अंग जो केवल दमनकारी थे काटकर अलग कर दिये जाते, पर उसके जायज़ काम समाज के प्रति जवाबदेह अभिकर्त्ताओं के हाथों में सौंप दिये जाते। लेकिन इन कामों को आगे बढ़ाने के लिए कम्यून को समय ही नहीं मिला।

पेरिस की एक कब्रगाह में मज़दूरों ने आख़िरी मोर्चा लिया।

1848 की क्रान्ति वह पहला मौक़ा था जब पूँजीपति वर्ग ने यह दिखाया कि जिस क्षण सर्वहारा अपने अलग हितों और अपनी अलग माँगों के साथ एक अलग वर्ग के रूप में खड़े होने का दुस्साहस करेगा, उस समय प्रतिशोध में पूँजीपति किस प्रकार पागलपन और क्रूरता का नंगा नाच दिखा सकते हैं। लेकिन 1871 में पूँजीपतियों ने जैसा वहशीपन दिखाया उसके आगे 1848 बच्चों का खेल था।

6. कम्यून में चूँकि प्रायः केवल मज़दूर या मज़दूरों के जाने-माने प्रतिनिधि बैठते थे इसलिए उसके निर्णयों का, निश्चित रूप से, सर्वहारा स्वरूप था। कम्यून ने अनेक ऐसी आज्ञप्तियाँ जारी कीं जो सीधे-सीधे मज़दूर वर्ग के हित में थीं और जो कुछ हद तक पुरानी समाज-व्यवस्था पर गहरा आघात पहुँचाती थीं। पर ऐसे नगर में जो दुश्मन के घेरे में हो, अधिक से अधिक इन चीज़ों को पूरा करने की शुरुआत ही हो सकती थी। मई 1871 के शुरू से ही कम्यून की सारी शक्ति, वर्साय-सरकार की नित्य बढ़ती हुई सेना से युद्ध करने में लग गयी। पेरिस पर लगातार गोलाबारी की जा रही थी—उन्हीं लोगों द्वारा, जिन्होंने प्रशा की फ़ौजों द्वारा इस नगर की गोलाबारी को धर्म-विरोधी आचरण कहा था। वे ही लोग अब प्रशा की सरकार से भिक्षा माँग रहे थे कि सेदान और मेत्ज में बन्दी बनाये गये फ्रांसीसी सैनिक जल्दी से लौटा दिये जायें, ताकि वे आकर उनके लिए पेरिस पर फिर कब्ज़ा कर लें।

7. मई के आरम्भ से इन सैनिकों के धीरे-धीरे वापस लौटने के कारण वर्साय की सैन्य-शक्ति निश्चित रूप से अधिक प्रबल हो गयी। वर्साय की फ़ौजों ने दक्षिणी मोर्चे पर मूलैं-साके के गढ़ पर 3 मई को कब्ज़ा कर लिया, 9 तारीख़ को फोर्ट-इस्सी पर उनका अधिकार हो गया जो गोलाबारी से बिलकुल खण्डहर हो चुका था, और 14 मई को फोर्ट-वांव उनके हाथ में आ गया। पश्चिमी मोर्चे पर वे नगर की दीवारों तक फैले अनेक गाँवों और इमारतों पर कब्ज़ा करते हुए धीरे-धीरे बढ़ कर मुख्य रक्षादुर्गों तक जा पहुँचीं।

ऊपर: स्त्री कम्युनार्डों की टुकड़ी मर्दों के कन्धे से कन्धा मिलाकर मोर्चे पर जाते हुए।
दायें: लड़ाई में जीतने के साथ ही बुर्जुआ सेना ने मेहनतकशों का भयानक दमन शुरू किया। कम्यून की जुझारू स्त्रियों पर सेना और अफ़सरों ने सबसे अधिक ग़ुस्सा निकाला।

8. 21 मई को ग़द्दारी तथा उस जगह पर तैनात राष्ट्रीय गार्ड की लापरवाही के कारण वर्साय की सेनाएँ नगर में प्रवेश करने में सफल हुईं। इस भूमि की रक्षा का प्रबन्ध पेरिसवासियों ने, उसे युद्धविराम की शर्तों के अधीनस्थ समझ कर स्वभावतया ढीला छोड़ दिया था। इसके फलस्वरूप, पेरिस के पश्चिमी हिस्से में, यानी अमीरों के ख़ास इलाके में प्रतिरोध कमज़ोर रहा; पर ज्यों-ज्यों अन्दर दाख़िल होने वाली फ़ौजें नगर के पूर्वी आधे हिस्से, यानी ख़ास मज़दूर इलाके के निकट आती गयीं, त्यों-त्यों उनका ख़ूब डटकर मुक़ाबला किया जाने लगा। पूरे आठ दिनों के युद्ध के बाद कहीं जाकर कम्यून के अन्तिम रक्षक बेलवील और मेनीलमांतां की चढ़ाइयों पर परास्त हुए। और तब निहत्थे मर्दों, औरतों और बच्चों का हत्याकाण्ड, जो बढ़ते हुए पैमाने पर पूरे हफ़्ते भर से चल रहा था, चरम बिन्दु पर पहुँच गया।

चूंकि तोड़ेदार बन्दूकों द्वारा लोगों को जल्दी से मौत के घाट नहीं उतारा जा सकता था, इसलिए सैकड़ों की संख्या में हारे हुए लोगों को एक साथ मित्रैयोज (एक प्रकार की मशीनगन) की गोलियों से भून दिया जाता था। पेयर-लाशेज के क़ब्रिस्तान में "फेडरलों की दीवार", जहाँ आख़िरी क़त्लेआम हुआ था, आज भी इस बात के मूक किन्तु व्यंजनापूर्ण प्रमाण के रूप में खड़ी है कि मज़दूर वर्ग जब अपने अधिकारों के लिए लड़ने का साहस करता है तो शासक वर्ग के ऊपर ख़ून सवार हो जाता है।

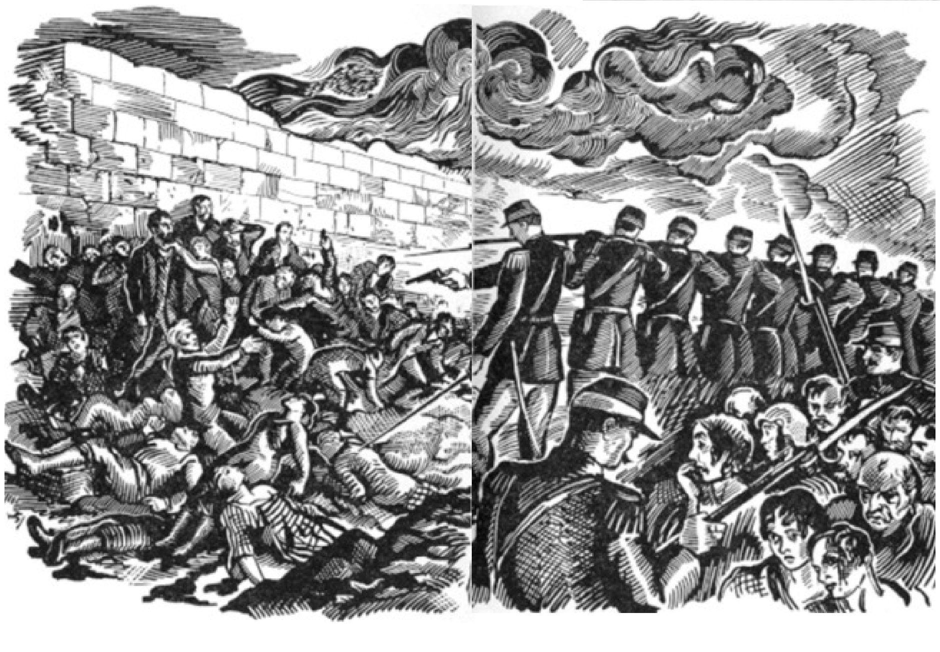

कम्यून के रक्षकों का आख़िरी मोर्चा। पहले मज़दूर राज की हिफ़ाज़त के लिए वे अन्तिम दम तक लड़ते रहे, लेकिन वे चारों ओर से घिर चुके थे और दुश्मन उनसे बहुत अधिक तादाद में था।

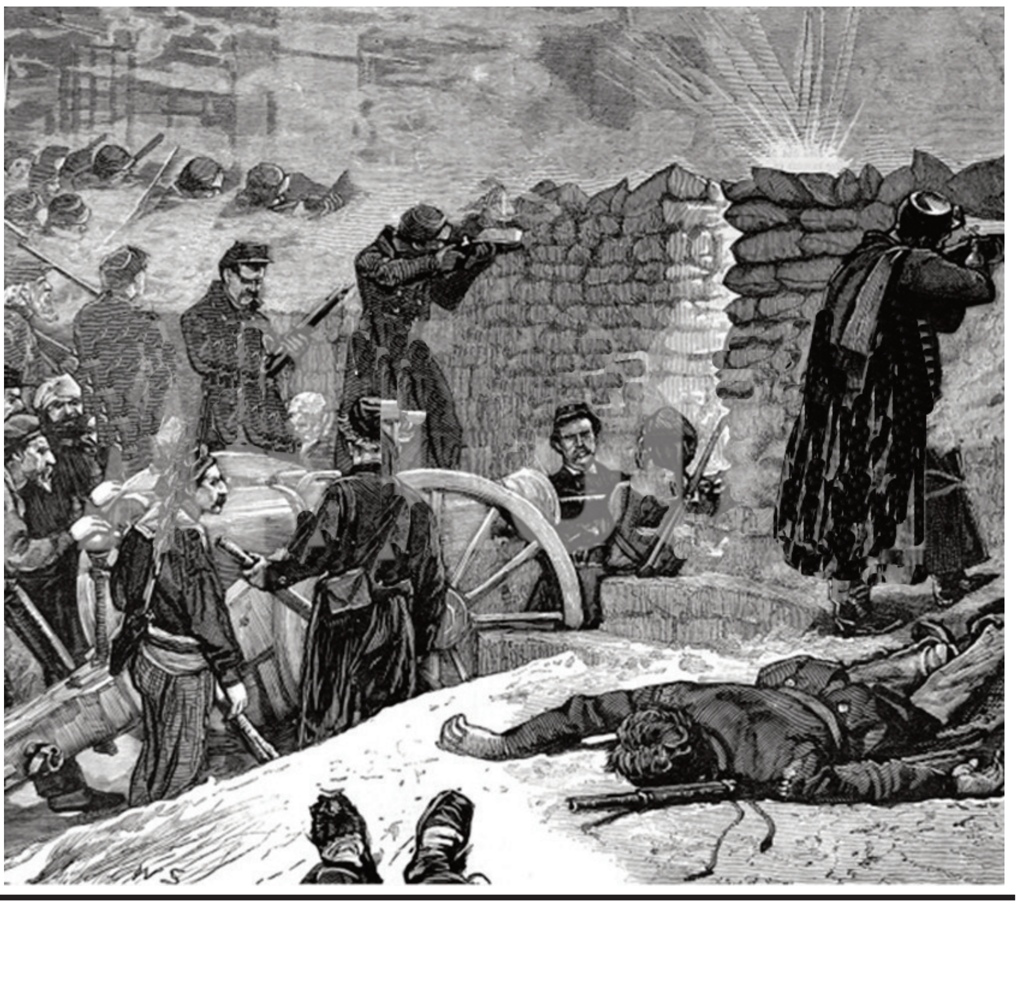

9. जब सभी को क़त्ल कर देना असम्भव साबित हुआ, तो आम गिरफ़्तारियों की बारी आयी, और बन्दियों में से मनमाने तौर पर कुछ को चुनकर गोलियों से उड़ाया जाने लगा और बाक़ी लोग बड़े-बड़े शिविरों में पहुँचाये गये, जहाँ उन्हें कोर्ट-मार्शल का इन्तज़ार करना था। पेरिस के उत्तर-पूर्वी हिस्से पर घेरा डाले हुए प्रशा के सैनिकों को यह आज्ञा थी कि वे किसी को उधर से भागने न दें; लेकिन जब सिपाही, आलाकमान के आदेश की बजाय मानवीय भावनाओं के आदेश का अधिक सम्मान करते थे, तो अफ़सर भी जानबूझ कर अनदेखी कर जाते थे। इस सम्बन्ध में सैक्सन फ़ौजी दस्ता विशेष रूप से इन्सानियत से पेश आया और उसने ऐसे बहुत से लोगों को निकल जाने दिया जो साफ़-साफ़ कम्यून के सिपाही थे।

(अगले अंक में जारी...)

पेरिस कम्यून : पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा (ग्यारहवीं किस्त)

आज भारत ही नहीं, पूरी दुनिया के मज़दूर पूँजी की लुटेरी ताक़त के तेज़ होते हमलों का सामना कर रहे हैं, और मज़दूर आन्दोलन बिखराब, ठहराव और हताशा का शिकार है। ऐसे में इतिहास के पन्ने पलटकर मज़दूर वर्ग के गौरवशाली संघर्षों से सीखने और उनसे प्रेरणा लेने की अहमियत बहुत बढ़ जाती है। आज से 141 वर्ष पहले, 18 मार्च 1871 को फ्रांस की राजधानी पेरिस में पहली बार मज़दूरों ने अपनी हुकूमत क़ायम की। इसे पेरिस कम्यून कहा गया। उन्होंने शोषकों की फैलायी इस सोच को ध्वस्त कर दिया कि मज़दूर राज-काज नहीं चला सकते। पेरिस के जाँबाज़ मज़दूरों ने न सिर्फ़ पूँजीवादी हुकूमत की चलती चक्की को उलटकर तोड़ डाला, बल्कि 72 दिनों के शासन के दौरान आने वाले दिनों का एक छोटा-सा मॉडल भी दुनिया के सामने पेश कर दिया कि समाजवादी समाज में भेदभाव, ग़ैर-बराबरी और शोषण को किस तरह ख़त्म किया जायेगा। आगे चलकर 1917 की रूसी मज़दूर क्रान्ति ने इसी कड़ी को आगे बढ़ाया।

मज़दूर वर्ग के इस साहसिक कारनामे से फ्रांस ही नहीं, सारी दुनिया के पूँजीपतियों के कलेजे काँप उठे। उन्होंने मज़दूरों के इस पहले राज्य का गला घोंट देने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया और आख़िरकार मज़दूरों के कम्यून को उन्होंने ख़ून की नदियों में डुबो दिया। लेकिन कम्यून के सिद्धान्त अमर हो गये। पेरिस कम्यून की हार से भी दुनिया के मज़दूर वर्ग ने बेशक़ीमती सबक़ सीखे। पेरिस के मज़दूरों की क़ुर्बानी मज़दूर वर्ग को याद दिलाती रहती है कि पूँजीवाद को मटियामेट किये बिना उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। 'मज़दूर बिगुल' के मार्च 2012 अंक से दुनिया के पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा की शुरुआत की गयी थी, जिसकी अब तक दस किस्तें प्रकाशित हुई हैं।

इस शृंखला की शुरुआती कुछ किश्तों में हमने पेरिस कम्यून की पृष्ठभूमि के तौर पर जाना कि पूँजी की सत्ता के ख़िलाफ़ मज़दूरों का संघर्ष किस तरह क़दम-ब-क़दम विकसित हुआ। हमने जाना कि कम्यून की स्थापना कैसे हुई और उसकी रक्षा के लिए मेहनतकश जनता किस प्रकार बहादुरी के साथ लड़ी। हमने यह भी देखा कि कम्यून ने सच्चे जनवाद के उसूलों को इतिहास में पहली बार अमल में कैसे लागू किया और यह दिखाया कि "जनता की सत्ता" वास्तव में क्या होती है। पिछली कड़ी से हम उन ग़लतियों पर नज़र डाल रहे हैं जिनकी वजह से कम्यून की पराजय हुई। इन ग़लतियों को ठीक से समझना और पूँजीवाद के ख़िलाफ़ निर्णायक जंग में जीत के लिए उनसे सबक़ निकालना मज़दूर वर्ग के लिए बहुत ज़रूरी है।

कम्यून की हिफ़ाज़त में अन्तिम दम तक लड़े मज़दूर

1. पूँजीवादी व्यवस्था की सभ्यता और न्याय अपना भयावह रूप तभी प्रकट करते हैं जब उसके गुलाम और जांगर खटाने वाले अपने मालिकों के ख़िलाफ़ सिर उठाते हैं। और तब यह सभ्यता और न्याय नग्न बर्बरता और प्रतिशोध के अपने असली रूप में प्रकट होते हैं। मेहनत के फलों को हड़पने वालों और उत्पादकों के वर्ग-संघर्ष के प्रत्येक नये संकट में यह तथ्य और अधिक नग्न रूप में सामने आता है। जून 1848 में मज़दूरों की बग़ावत को कुचलने के लिए पूँजीपतियों के ज़ालिमाना कारनामे भी 1871 के अमिट कलंक के आगे फीके पड़ गये। अपना सबकुछ दाँव पर लगाकर जिस वीरता और शौर्य के साथ पेरिस के स्त्री-पुरुष और बच्चे तक वसार्य-पंथियों के प्रवेश के बाद आठ दिनों तक लड़े, वह इस बात का प्रमाण था कि वे किस ऊँचे लक्ष्य के लिए लड़ रहे थे। दूसरी ओर, वर्साय के फौजियों के नारकीय कृत्य उस सभ्यता की गन्दी आत्मा को प्रतिबिम्बित कर रहे थे जिसके वे भाड़े के नौकर थे।

ऊपर: कम्यून के लाल झण्डे तले पूँजीपतियों की फ़ौज के साथ आर-पार के मुक़ाबले में जुटे पेरिस के जांबाज़ मज़दूर और स्त्रियाँ।
दायें: भीषण युद्ध के बीच कुछ आराम और आगे की लड़ाई की तैयारी करते पेरिस के मेहनतकश लोग।

2. थियेर और उसके ख़ूनी कुत्तों के कारनामों की मिसाल केवल प्राचीन रोमन साम्राज्य में हुए बर्बर हत्याकाण्डों से दी जा सकती है। उसी प्रकार का भीषण क़त्लेआम–उसी उपेक्षा के साथ चाहे कोई बूढ़ा हो या जवान, मर्द हो या औरत। बन्दियों को शारीरिक यातना देने के वही वहशियाना तरीक़े, उसी प्रकार का मनमाना न्याय, परन्तु इस बार एक पूरे के पूरे वर्ग के ख़िलाफ़। ख़ूँख़ार तरीके से फरार नेताओं का पीछा, ताकि कोई भाग कर निकल न सके, उसी प्रकार राजनीतिक और वैयक्तिक शत्रुओं पर दोषारोपण, उसी प्रकार बेगुनाह लोगों का, जिनका संघर्ष से कोई सम्बन्ध न था, अन्धाधुन्ध वध। फ़र्क़ केवल इतना था कि, रोमनों के पास बाग़ियों की पूरी की पूरी टोलियों का एक ही वार में सफ़ाया करने वाला, मशीनगन जैसा हथियार नहीं था। इसके अलावा रोमनों ने, न तो क़ानून और न्याय का नाटक किया था और न "सभ्यता" की दुहाई दी थी।

3. मज़दूरों को कुचलने के इस पाशविक अभियान ने पूँजीवादी सभ्यता के भयंकर चेहरे को नंगा कर दिया। उसके अपने ही अख़बारों ने इस बात का वर्णन किया है! लन्दन के एक टोरी पत्र के पेरिस संवाददाता ने लिखा: "ऐसे समय जब गोलियों की आवाज़ें अब भी कहीं दूर गूँज रही हैं; घायल अभागे, जिनकी कोई देखभाल करने वाला नहीं, पेयर-ला-शेज़ की कब्रों के बीच दम तोड़ रहे हैं; 6,000 आतंकग्रस्त बाग़ी, निराशा से बदहवास होकर, भूगर्भस्थ तहख़ानों की भुलभुलैयों में घूम रहे हैं; पकड़े गये अभागे मशीनगन की गोलियों से एक साथ बीसियों की संख्या में उड़ा देने के लिए जल्दी-जल्दी सड़कों से ले जाये जाते हैं; शराब, बिलियर्ड और डोमिनो के शौक़ीनों की भीड़, सजे हुए चौराहों पर विचरती हुई दुराचारिणी नारियाँ, फ़ैशनेबुल रेस्तराओं के अन्तःकक्ष से गूँजती हुई और रात्रि की शान्ति को भंग करती हुई विलासोल्लास की ध्वनि घृणा उत्पन्न करती है।"

कम्यून की रक्षा के लिए अन्तिम साँस तक जूझते पेरिस के मेहनतकश

4. 'जूर्नाल द पेरिस' नामक वर्सायपंथी अख़बार में, जिसे कम्यून ने बन्द कर दिया था, श्री एडुअर्ड एर्वे लिखते हैं: "पेरिस की जनता ने कल जिस ढंग से अपनी सन्तुष्टि अभिव्यक्त की, उसमें ओछेपन का आवश्यकता से अधिक आभास था और हमें डर है कि समय बीतने के साथ यह और बढ़ता जायेगा। पेरिस में जो इस समय उत्सव के दिनों जैसी तड़कभड़क है वह नितान्त अनुपयुक्त है; यह चीज़ निश्चय ही ख़त्म होनी चाहिये वरना लोग हमें पतनोन्मुख पेरिसवासी कह कर पुकारेंगे।" इसके बाद उन्होंने एक पुराने लेखक तासितुस की निम्नलिखित उक्ति उद्धृत की–"पर उस भीषण संघर्ष की अगली सुबह को ही जब कि संघर्ष पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ था, पतित और भ्रष्टाचारी रोम एक बार फिर व्यभिचार के उस कीचड़ में लोटने लगा जो उसके शरीर को नष्ट एवं उसकी आत्मा को भ्रष्ट कर रहा था।" श्री एर्वे सिर्फ़ इतना कहना भूल गये कि जिस "पेरिस की जनता" की बात उन्होंने कही है वह थियेर की, वर्साय और आसपास से झुण्ड के झुण्ड लौट रहे धूर्तों की, यानी पतनोन्मुख पेरिस की जनता थी।

कम्यून के 100 वर्ष होने पर सोवियत संघ में निकला डाक टिकट

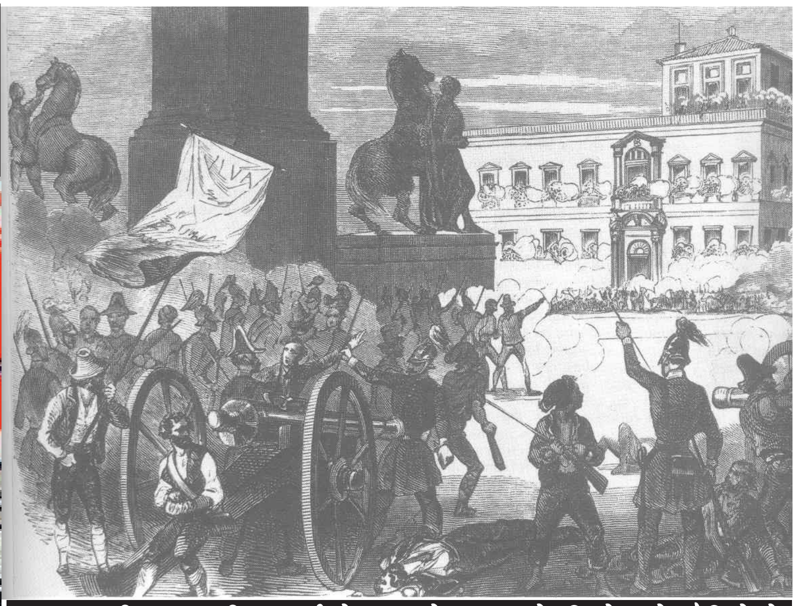

कम्यून की रक्षा की लड़ाई में सड़कों पर खड़े किये गये बैरिकेडों की बहुत बड़ी भूमिका थी। ऊपर के चित्र में जनता द्वारा बनाया गया एक यंत्र दिख रहा है जिसका इस्तेमाल बैरिकेड बनाने में किया जाता था। ऊपर बायें चित्र में एक बैरिकेड पर तैनात नेशनल गार्ड के योद्धा लाल झण्डे के साथ।

5. मेहनत की गुलामी पर आधारित यह जघन्य सभ्यता जब-जब नये और श्रेष्ठतर समाज के आत्मत्यागी समर्थकों पर रक्तरंजित विजय प्राप्त करती है, वह पराजितों की कराह को कुत्सा-प्रचार की एक बाढ़ में डुबो देती है, और यह कुत्सा-प्रचार पूरी दुनिया में फैलाया जाता है। मज़दूरों का प्रशान्त पेरिस, जहाँ कम्यून का राज था, "व्यवस्था" के ख़ूनी कुत्तों द्वारा सहसा अव्यवस्था और हिंसा की अन्धेर-नगरी बना दिया जाता है। और संसार के सभी देशों में पूँजीवादी दिमाग़ के लिए यह ज़बरदस्त परिवर्तन क्या सिद्ध करता है? यही कि कम्यून ने सभ्यता के विरुद्ध षड्यंत्र किया था! कम्यून के लिए पेरिस की जनता इतनी बड़ी संख्या में उत्साहपूर्वक अपने प्राणों की बलि देती है जिसकी इतिहास में दूसरी मिसाल नहीं। इससे क्या सिद्ध होता है? यही कि कम्यून जनता की सरकार नहीं थी, बल्कि मुट्ठी-भर मुज़रिमों की नाजायज़ हुक़ूमत थी! पेरिस की मेहनतकश स्त्रियाँ ख़ुशी-ख़ुशी सड़क-मोर्चों और फाँसी के तख़्तों पर अपने प्राणों की बलि चढ़ाती हैं। यह क्या सिद्ध करता है? यही कि कम्यून रूपी राक्षस ने उन्हें लड़ाका राक्षसियाँ बना दिया! जितनी वीरता के साथ कम्यून ने अपनी रक्षा के लिए युद्ध किया उतनी ही उसने, दो महीने के एकछत्र शासन में, नरमी भी बरती। यह क्या सिद्ध करता है? यही कि कम्यून महीनों तक कोमलता और मानवीयता के छद्म आवरण में अपनी रक्तलोलुप राक्षसी हिंस्रवृत्ति को छिपाये हुए था।

मज़दूरों ने पुराने शासन में दमन के सबसे बड़े प्रतीक 'गिलोतीन' को तोड़ डाला। लेकिन वे शोषण की पुरानी व्यवस्था को जड़ से उखाड़ नहीं फेंक पाये। यह काम उनकी आने वाली पीढ़ियों को पूरा करना है।

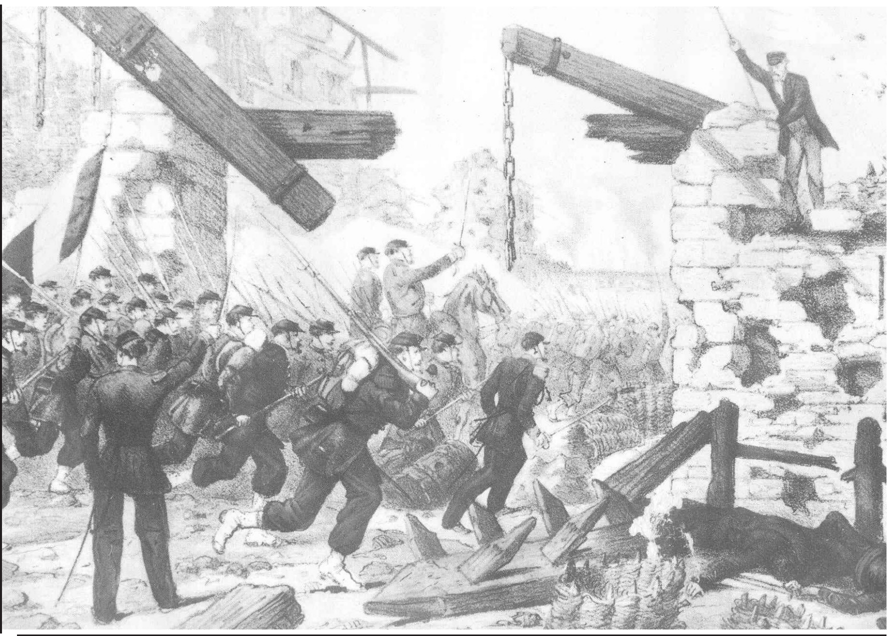

पूँजीपतियों ने मज़दूरों के ख़ूनी दमन में बर्बरता की सारी हदें पार कर दीं, लेकिन मज़दूरों ने अपनी आत्मरक्षा के लिए पीछे हटते हुए जब कुछ इमारतों को आग लगायी तो उनके सारे नेता और अख़बार वहशीपन कहकर चिल्लाने लगे।

6. पूँजीपतियों ने इस बात पर बहुत शोर-शराबा मचाया कि मज़दूरों ने पेरिस की इमारतों को जलाकर बर्बाद कर दिया। आज भी बुर्जुआ प्रचार माध्यम कम्यून के इतिहास में पेरिस की तबाही को सबसे बड़ी घटना के रूप में पेश करते हैं। मगर सच्चाई क्या थी? मज़दूरों के पेरिस ने जब वीरतापूर्वक अपने को क़ुरबान करना शुरू किया, तो उन्होंने इमारतों और स्मारकों को भी इस आग की लपट में भस्म हो जाने दिया। सर्वहाराओं के जीवित शरीर की बोटी-बोटी काटते समय उसके शासकों को आग से यह उम्मीद नहीं करनी चाहिये कि जीतकर घर लौटने पर वे अपनी इमारतों को सही सलामत खड़ी पायेंगे। वर्साय की सरकार ने "आगज़नी!" का शोर मचाया और दूरवर्ती गाँवों तक में अपने गुर्गों को संकेत दिया कि वे उसके शत्रुओं को पेशेवर आगज़नी करने वाले बताकर पकड़ें। मार्क्स ने लिखा, "सारी दुनिया के पूँजीपति, जो युद्ध के बाद होने वाले सामूहिक हत्याकाण्ड पर चूँ तक नहीं करते, ईंट और गारे की पवित्रता नष्ट होने पर काँप उठते हैं!"

7. कम्यून ने आग का इस्तेमाल सोलहों आना प्रतिरक्षात्मक साधन के रूप में किया। उसने इसका इस्तेमाल वर्साय की फ़ौजों के लिए उन लम्बे, सीधे मार्गों को बन्द करने के लिए किया, जिन्हें वर्साय के जनरल ओस्मान ने ऐलानिया तौर पर तोपख़ाने की मार के लिए खुला रखा था। मज़दूर पीछे हटते समय अपने बचाव के लिए उसी प्रकार आग का इस्तेमाल कर रहे थे जिस प्रकार वर्साय के सिपाही आगे बढ़ने के लिए तोप के गोलों का इस्तेमाल कर रहे थे, जिनसे कम से कम उतने ही मकान नष्ट हुए जितने कम्यून द्वारा आग लगाये जाने से। यह कभी पता नहीं चल सका कि किन मकानों को प्रतिरक्षकों ने जलाया और किन मकानों को आक्रमणकारियों ने जलाया। और प्रतिरक्षकों ने आग का इस्तेमाल तभी किया जब वर्साय के फौजियों ने बन्दियों को अन्धाधुन्ध क़त्ल करना शुरू किया। इसके अलावा कम्यून ने बहुत पहले ही, सार्वजनिक रूप से, इस बात की घोषणा की थी कि अगर उसे आख़िरी हद तक मज़बूर किया गया तो वह अपने को पेरिस के खण्डहरों में दफ़्न कर देगा। कम्यून जानता था कि उसके विरोधियों को पेरिस की जनता के प्राणों की चिन्ता नहीं है, लेकिन उन्हें पेरिस की अपनी इमारतों की फ़िक्र ज़रूर है।

ऊपर और बायें : मई 1871 के दिनों में हुई भीषण लड़ाई में तबाह हुई पेरिस की इमारतें। युद्ध में आग का प्रयोग वस्तुतः वैसा ही जायज़ हथियार है जैसा कोई भी हथियार हो सकता है। उन इमारतों पर, जिन पर दुश्मन का कब्ज़ा है, आग लगाने के लिए गोलाबारी की जाती है। यदि रक्षकों को पीछे हटना पड़ता है तो वे स्वयं उनमें आग लगा देते हैं ताकि आक्रमण के लिए उन्हें इस्तेमाल न किया जा सके। सारी दुनिया में नियमित सेनाओं के युद्ध-मोर्चों के क्षेत्र में स्थित मकानों की यह बदकिस्मती रही है कि वे जलाये जायें। लेकिन दास-उत्पीड़कों के विरुद्ध दासों के युद्ध में, जो इतिहास का एकमात्र न्यायपूर्ण युद्ध है, हमेशा यह कहा जाता है कि यहाँ यह नियम लागू नहीं होता!

8. पेरिस कम्यून को कुचलने के बाद प्रशा और फ्रांस के पूँजीपति एक हो गये जिनके बीच कुछ ही महीने भीषण युद्ध चल रहा था। यह इस बात का सबूत था कि जैसे ही वर्ग-संघर्ष गृह-युद्ध की शक्ल अख़्तियार कर लेता है, वैसे ही राष्ट्रीयता का नक़ाब उतार दिया जाता है। सर्वहारा वर्ग के विरुद्ध सभी राष्ट्रीय सरकारें एक हो जाती हैं! यह बात 1917 में फिर दोहरायी गयी जब सोवियत संघ में मज़दूरों की सत्ता क़ायम होते ही 16 देशों की सरकारों ने मिलकर उस पर हमला बोल दिया था।

ख़ून की होली खेलते समय अपने शिकार के विरुद्ध कुत्साप्रचार की आँधी छेड़ देना शासक वर्गों की पुरानी नीति रही है। इस मामले में पूँजीपति वर्ग पुराने जमाने के उन सामन्तों का ही वारिस है जो समझते थे कि आम जनता के विरुद्ध अपने प्रत्येक हथियार का उपयोग जायज़ है, लेकिन आम जनता के हाथ में किसी प्रकार का हथियार होना जुर्म है।

मज़दूरों के महान नेता और शिक्षक – कार्ल मार्क्स

"कम्यून के सिद्धान्त शाश्वत और अनश्वर हैं, जब तक मज़दूर वर्ग मुक्त नहीं हो जाता, तब तक ये सिद्धान्त बार-बार प्रकट होते रहेंगे।"
– कार्ल मार्क्स

कम्यूनार्डों के रक्त से इतिहास ने मज़दूरों के लिए यह कड़वी शिक्षा लिखी कि सर्वहारा वर्ग को क्रान्ति को अन्त तक चलाना होगा। सत्ता न तो शान्तिपूर्वक मिलेगी, न ही शान्तिपूर्वक उसकी हिफ़ाज़त की जा सकेगी।

9. 1871 के पेरिस कम्यून के दमन ने यह भी साबित कर दिया कि मज़दूरों और उनके उत्पादन को हड़प लेने वालों के बीच अब स्थायी शान्ति या युद्ध-विराम नहीं हो सकता। संघर्ष बार-बार और उत्तरोत्तर बढ़ते हुए पैमाने पर अनिवार्य रूप में छिड़ेगा और इसमें सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं कि अन्त में विजय किसकी होगी–मुट्ठी-भर लुटेरों की या बहुसंख्यक श्रमिक वर्ग की। **कार्ल मार्क्स** के शब्दों में, **"मज़दूरों का पेरिस और उसका कम्यून नये समाज के शानदार पथ प्रदर्शक के रूप में सदा यशस्वी रहेगा। उसके शहीदों ने मज़दूर वर्ग के विशाल हृदय में अपना स्थान बना लिया है। उसे मिटाने वालों को इतिहास ने चिरकाल के लिए मुजरिम के उस कठघरे में बन्द कर दिया है जिससे उनके पादरियों की सारी प्रार्थनाएँ भी उन्हें छुड़ा न सकेंगी।"**

(अगले अंक में जारी...)

पेरिस कम्यून : पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा (बारहवीं किस्त)

आज भारत ही नहीं, पूरी दुनिया के मज़दूर पूँजी की लुटेरी ताक़त के तेज़ होते हमलों का सामना कर रहे हैं, और मज़दूर आन्दोलन बिखराव, ठहराव और हताशा का शिकार है। ऐसे में इतिहास के पन्ने पलटकर मज़दूर वर्ग के गौरवशाली संघर्षों से सीखने और उनसे प्रेरणा लेने की अहमियत बहुत बढ़ जाती है। आज से 141 वर्ष पहले, 18 मार्च 1871 को फ्रांस की राजधानी पेरिस में पहली बार मज़दूरों ने अपनी हुक़ूमत क़ायम की। इसे पेरिस कम्यून कहा गया। उन्होंने शोषकों की फैलायी इस सोच को ध्वस्त कर दिया कि मज़दूर राज-काज नहीं चला सकते। पेरिस के जाँबाज़ मज़दूरों ने न सिर्फ़ पूँजीवादी हुक़ूमत की चलती चक्की को उलटकर तोड़ डाला, बल्कि 72 दिनों के शासन के दौरान आने वाले दिनों का एक छोटा-सा मॉडल भी दुनिया के सामने पेश कर दिया कि समाजवादी समाज में भेदभाव, ग़ैर-बराबरी और शोषण को किस तरह ख़त्म किया जायेगा। आगे चलकर 1917 की रूसी मज़दूर क्रान्ति ने इसी कड़ी को आगे बढ़ाया।

मज़दूर वर्ग के इस साहसिक कारनामे से फ्रांस ही नहीं, सारी दुनिया के पूँजीपतियों के कलेजे काँप उठे। उन्होंने मज़दूरों के इस पहले राज्य का गला घोंट देने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया और आख़िरकार मज़दूरों के कम्यून को उन्होंने ख़ून की नदियों में डुबो दिया। लेकिन कम्यून के सिद्धान्त अमर हो गये। पेरिस कम्यून की हार से भी दुनिया के मज़दूर वर्ग ने बेशक़ीमती सबक़ सीखे। पेरिस के मज़दूरों की क़ुर्बानी मज़दूर वर्ग को याद दिलाती रहती है कि पूँजीवाद को मटियामेट किये बिना उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। 'मज़दूर बिगुल' के मार्च 2012 अंक से दुनिया के पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा की शुरुआत की गयी थी, जिसकी अब तक ग्यारह किस्तें प्रकाशित हुई हैं।

इस शृंखला की शुरुआती कुछ किश्तों में हमने पेरिस कम्यून की पृष्ठभूमि के तौर पर जाना कि पूँजी की सत्ता के ख़िलाफ़ मज़दूरों का संघर्ष किस तरह क़दम-ब-क़दम विकसित हुआ। हमने जाना कि कम्यून की स्थापना कैसे हुई और उसकी रक्षा के लिए मेहनतकश जनता किस प्रकार बहादुरी के साथ लड़ी। हमने यह भी देखा कि कम्यून ने सच्चे जनवाद के उसूलों को इतिहास में पहली बार अमल में कैसे लागू किया और यह दिखाया कि "जनता की सत्ता" वास्तव में क्या होती है। पिछली कुछ कड़ियों में हमने उन ग़लतियों को भी समझा जिनकी वजह से कम्यून की पराजय हुई। इन ग़लतियों को ठीक से समझना और पूँजीवाद के ख़िलाफ़ निर्णायक जंग में जीत के लिए उनसे सबक़ निकालना मज़दूर वर्ग के लिए बहुत ज़रूरी है।

कम्यून की शिक्षाओं की रोशनी में सर्वहारा का मुक्ति संघर्ष विजयी होगा

1. पिछले अंकों में हमने मज़दूर वर्ग के इतिहास की सबसे प्रेरणादायी गाथा के बारे में जाना। किस प्रकार फ्रांस में नेपोलियन तृतीय ने द्वितीय साम्राज्य के चरमराते शासन में कुछ जान फूँकने की कोशिश में जुलाई, 1870 में प्रशिया के ख़िलाफ़ युद्ध की घोषणा की थी; किस तरह वह बुरी तरह हारा और प्रशिया की फ़ौज के सामने पेरिस को अरक्षित छोड़ दिया; किस तरह सितम्बर 1870 में एक पूँजीवादी गणतन्त्र की घोषणा की गयी और तथाकथित राष्ट्रीय प्रतिरक्षा सरकार का गठन हुआ; किस तरह इस सरकार ने दुश्मन से घिरे शहर के साथ दग़ाबाज़ी की और किस तरह पेरिस की जनता उठ खड़ी हुई और अपने बचाव के लिए ख़ुद को हथियारबन्द किया; जब सरकार ने उनके नेशनल गार्ड (रक्षक दल) को निहत्था करने का प्रयास किया तो कैसे पेरिस की जनता ने 18 मार्च को कम्यून की घोषणा कर दी और नगर के शासन को अपने हाथों में ले लिया; कैसे विश्वासघाती थियेर सरकार वर्साय भाग गयी और वहाँ प्रशियाइयों के साथ मिलकर उसने कम्यून को उखाड़ फेंकने की साज़िश रची; और किस प्रकार पेरिस के मज़दूरों ने 72 दिनों तक कम्यून को क़ायम रखा और उस वक़्त अपने ख़ून की आख़िरी बूँद तक उसकी हिफ़ाज़त की जब वर्साय की सेना नगर में घुस आयी और उन दसियों हज़ार औरतों और मर्दों को मौत के घाट उतार दिया जिन्होंने राजधानी के शासन पर क़ब्ज़ा करने तथा शोषितों और वंचितों के हित में इसे संचालित करने की हिम्मत की थी।

ऊपर: कम्यून के लाल झण्डे की अगुवाई में पेरिस के जांबाज़ मज़दूरों ने बैरिकेडों की लड़ाई में पूँजीपतियों की फौज का डटकर मुक़ाबला किया। दायें: कम्यून की घोषणा के बाद कम्यून की सरकार की हिफ़ाज़त में डटे हुए हथियारबन्द मज़दूरों का दस्ता।

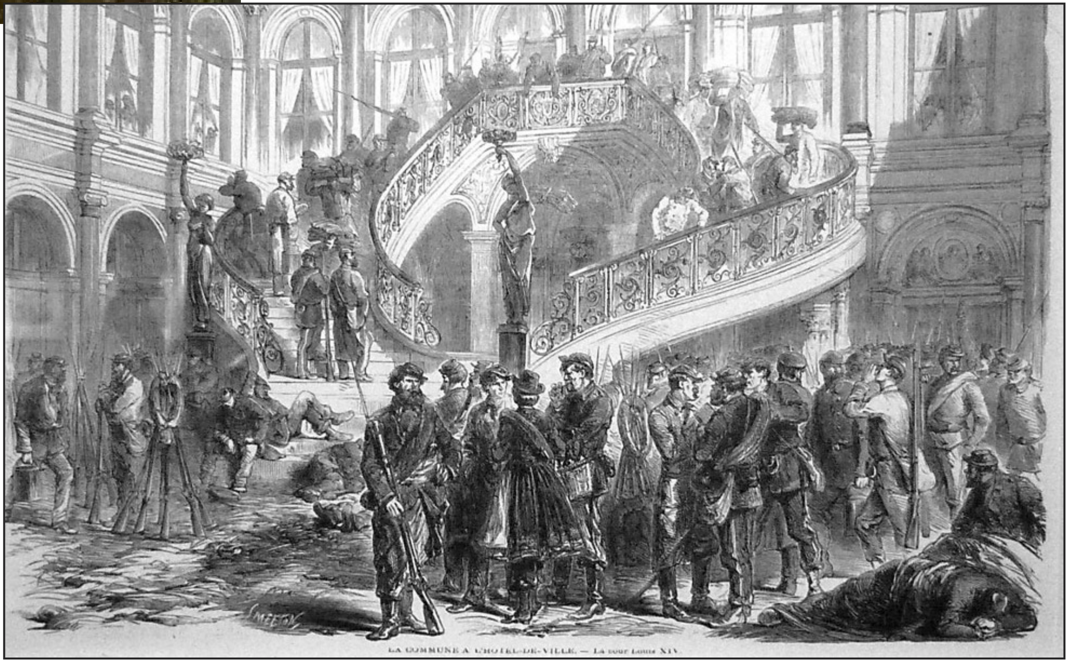

2. जहाँ कहीं भी मज़दूर इस बहादुराना संघर्ष की कहानी एक बार फिर सुनने के लिए इकट्ठा होंगे – एक ऐसी कहानी जो बहुत पहले ही सर्वहारा शौर्य-गाथाओं के ख़ज़ाने में शामिल हो चुकी है – वे 1871 के शहीदों की स्मृति को गर्व के साथ याद करेंगे। और साथ ही वे आज के वर्ग संघर्ष के उन शहीदों को भी याद करेंगे जो या तो मार डाले गये या पूँजीवादी देशों के क़ैदख़ानों में अब भी यातना झेल रहे हैं, क्योंकि उन्होंने अपने उत्पीड़कों के ख़िलाफ़ बग़ावत करने की हिम्मत की थी, जैसा कि पेरिस के मज़दूरों ने करीब डेढ़ सौ साल पहले किया था।

3. लेकिन मज़दूर केवल कम्युनार्डों की बहादुराना कार्रवाइयों से ही प्रेरणा नहीं लेंगे, जो कार्ल मार्क्स के शब्दों में "स्वर्ग पर धावा बोलने को तैयार" थे। वे कम्यून की कहानी को उसकी उपलब्धियों के साथ-साथ उसकी उन ग़लतियों और कमियों की रोशनी में भी फिर से देखेंगे जिसके लिए पेरिस के मज़दूरों को इतनी भारी क़ीमत चुकानी पड़ी थी।

जिस वक़्त पेरिस में मज़दूर अपने वर्ग शत्रुओं से लोहा ले रहे थे और एक नये समाज की रचना कर रहे थे उस समय मार्क्स लगातार इस ऐतिहासिक घटनाक्रम पर नज़र रखे हुए थे और मज़दूरों को सलाह रहे थे।

4. कम्यून ने अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर वर्ग को कई सबक दिये। सर्वहारा वर्ग के नेताओं मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन ने कम्यून के अनुभवों का गहराई के साथ अध्ययन किया और रूसी मज़दूरों ने मज़दूरों के राज को मज़बूती से स्थापित करके यह दिखाया कि पहली सर्वहारा क्रान्ति की इन शिक्षाओं को उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया था। उसके बाद दुनिया के अनेक देशों में मज़दूरों की अगुवाई में मेहनतकश जनता का शासन क़ायम हुआ और दुनिया से शोषण और ग़ैर-बराबरी को ख़त्म करने की दिशा में महान डग भरे गये। इन सबमें पेरिस कम्यून की मशाल उन्हें रास्ता दिखाती रही। "स्वर्ग के स्वामियों" ने अपनी पुरानी दुनिया को बचाने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया और मज़दूर वर्ग के भितरघातियों-गद्दारों ने उनकी पूरी मदद की। नयी दुनिया रचने की इस जद्दोजहद में मज़दूर वर्ग के नेताओं से भी कुछ ग़लतियाँ हुईं। आज दुनिया के पैमाने पर मानव मुक्ति की लड़ाई में सर्वहारा की सेना को जीते हुए मोर्चे हारकर पीछे हटना पड़ा है। लेकिन इन हारों से भी सबक लेकर मज़दूर वर्ग एक बार फिर उठ खड़ा हुआ और इस बार पूँजीवाद-साम्राज्यवाद को हमेशा के लिए क़ब्र में सुलाकर ही दम लेगा, यह तय है।

5. कम्यून की चालीसवीं वर्षगाँठ पर 1921 में रूसी क्रान्ति के नेता **लेनिन** ने लिखा, "आधुनिक समाज में सर्वहारा, जिसे पूँजी द्वारा आर्थिक रूप से गुलाम बना लिया गया है, तब तक राजनीतिक रूप से शासन नहीं कर सकता जब तक वह उन बेड़ियों को तोड़ न दे जो पूँजी के साथ उसे बाँधती हैं। इसीलिए कम्यून को समाजवादी दिशा पर आगे बढ़ना चाहिए था, यानी उसे पूँजीपति वर्ग के शासन, पूँजी के शासन को उखाड़ फेंकने की कोशिश करनी चाहिए थी और मौजूदा सामाजिक व्यवस्था की बुनियाद को ही नेस्तनाबूद करने की कोशिश करनी चाहिए थी।" 1917 में जब रूसी मज़दूरों ने महान सोवियत कम्यून की स्थापना की तो उनके पास अधिक अनुकूल वस्तुपरक परिस्थितियों के साथ-साथ उन्हें नेतृत्व देने के लिए सर्वहारा की एक ऐसी सुदृढ़ क्रान्तिकारी पार्टी मौजूद थी, जो पेरिस के मज़दूरों के पास नहीं थी।

कम्यून फ्रांसीसी मज़दूर वर्ग की महान परम्परा है। पेरे लाशेज़ की ख़ामोश दीवारें (जहाँ कम्युनार्डों को गोली मारी गयी थी) फ्रांसीसी मज़दूरों को उनके सर्वहारा पूर्वजों की बहादुरी की याद दिलाती हैं, जो उजरती गुलामी से मुक्ति के लिए संघर्ष में उतर पड़े थे। कम्यून समूचे सर्वहारा की विरासत भी है। यह पहली ऐसी क्रान्ति थी जिसमें मज़दूरों ने सिर्फ़ संघर्ष ही नहीं किया बल्कि उसे नियन्त्रित भी किया और सर्वहारा लक्ष्य की दिशा में मोड़ दिया।

पहले इण्टरनेशनल की सभा में पेरिस कम्यून पर रिपोर्ट पेश करते हुए कार्ल मार्क्स

6. पेरिस कम्यून क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग की युग-प्रवर्तक उपलब्धि है। अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संघ (पहले इण्टरनेशनल) में अपने ऐतिहासिक 'सम्बोधन' के अन्त में मार्क्स के शब्द थे – "मज़दूरों के पेरिस और उसके कम्यून को नये समाज के गौरवपूर्ण अग्रदूत के रूप में हमेशा याद किया जायेगा। इसके शहीदों ने मज़दूर वर्ग के महान हृदय में अपना स्थान बना लिया है। इसका संहार करने वालों को इतिहास ने सदा के लिए मुजरिम के ऐसे कटघरे में बन्द कर दिया है जिससे उनके पुरोहितों की सारी प्रार्थनाएँ भी उन्हें छुड़ाने में नाकाम रहेंगी।"

(अगले अंक में जारी)